शोधादर्श
82

कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

अभिनन्दन समारोह की झलकियां

श्री नलिन कान्त जैन का तिलक लगाकर

तथा शिरस्त्राण पहनाकर अभिनन्दन

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	सौ. डॉ. अलका अग्रवाल

प्रकाशक

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004, टेलीफोन सं. (0522) 2451375

ई–मेल : shodhadarsh@gmail.com

णाणं णरस्स सारं – सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्त्व है

वीर निर्वाण संवत् 2542 **शोधादर्श - 82** दिसम्बर 2015 ई.

विषय क्रम

1	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	4
2	गुरुगुण–कीर्तन मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	5– 10
3	तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन	श्री अजित प्रसाद जेन	11–12
4	श्री महावीर वचनामृत		12
5	अध्यात्म–रसिक कविवर भगवतीदास	श्री रमा कान्त जैन	13–17
6	मैं देह के मकान में (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	18
7	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि एवं उसके समीपस्थ जैन मंदिर व स्मारक	प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन	19–23
8	मुनि रामसिंह की दृष्टि में शुद्धात्म–शिव और शिव पूजन की अहिंसक सामग्री	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	24–27
9	मिले सुख–सावन (पद्य)	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	27
10	Jain Inscriptions of the Chālukya	कु. पीनल जैन	28–33

11	एक निष्ठावान श्रावक का भावचिन्तन	श्री मगन लाल जैन	34–36
12	मैंने अमृत पी लिया है (पद्य)	श्री अमर नाथ	37
13	रिपोर्ट : अहिंसा इन्टरनेशनल अभिनन्दन समारोह–2015	श्रीमती मोहिनी जैन	38–41
14	सविनय स्मरण	डॉ. शशि कान्त	42–44
	डॉ. सुरेन्द्र कुमार (माथुर)		
	श्री शांति प्रकाश जैन		
	डॉ. लक्ष्मी चंद्र जैन		
	डॉ. (श्रीमती) सरला शुक्ला		
	श्री राम कृष्ण त्रिवेदी		
	श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा		
15	साहित्य सत्कार	डॉ. शशि कान्त	45–49
	तत्त्वार्थसूत्रम्; प्राकृत की पुरुषार्थ कथाएं;		
	मोक्ष मार्ग प्रकाशक के मंगल सूत्र;		
	विश्व के धर्म : अहिंसा और शाकाहार;		
	सरल करणानुयोग प्रवेश; घर की चिकित्सा;		
	गोमती; धर्ममंगल; युगो से युगों तक दशपुर;		
	वैशाली इन्स्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन		
16	आभार		50
17	अभिनन्दन		50–51
18	शोक संवेदन		52
19	समाचार विविधा		53–55
	भगवान महावीर फाउन्डेशन, चेन्नई		
	श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी		
	राष्ट्रीय जैन विद्वत् गोष्ठी		
	राष्ट्रहित में जैन समुदाय के योगदान पर कार्यशाला		
20	समाचार विमर्श		
	संथारा पर हंगामा	डॉ. शशि कान्त	56–57
21	पाठकों के पत्र		58–63
	डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'		
	श्री पी.एन. सुकुल, श्री बी.डी. अग्रवाल		
	श्री मोतीलाल जैन 'विजय' व श्रीमती विमला जैन		
	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, श्री ललित कुमार नाहटा		
	श्री सुरेश जैन 'सरल'		

22 शोधादर्श के अभिदाता 64
23 अनुक्रमणिका – शोधादर्श 77–82 65–71
24 आवश्यक सूचना 72

चित्र परिचय

कवर पृ. 1

कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली

नई दिल्ली में, 18–बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया में स्थित, **कुन्दकुन्द भारती** के खारवेल हॉल में दिनांक 6 दिसम्बर 2015 को 'अहिंसा इन्टरनेशनल' के 42वें स्थापना दिवस पर पुरस्कार–अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया गया।

कवर पृ. 2

अभिनन्दन समारोह की झलकियां

शोधादर्श के सम्पादक श्री नलिन कान्त जैन का तिलक लगा कर तथा शिरस्त्राण पहना कर अभिनन्दन। साथ में उनकी सहधर्मिणी श्रीमती मोहिनी जैन हैं।

कवर पृ. 3

अभिनन्दन समारोह की झलकियां

श्री नलिन कान्त जैन को अभिनन्दन पत्र प्रदान करते हुए अहिंसा इन्टरनेशनल के पदाधिकारी और पुरस्कार प्रदाता के परिवार के सदस्य; तथा

पुरस्कार प्राप्तकर्ता महानुभावों का आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के साथ सामूहिक चित्र।

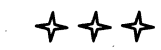

सम्पादकीय

श्रद्धेय पितामह कीर्तिशेष इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने जिस उद्देश्य से **शोधादर्श** पत्रिका की शुरूआत की थी, वह सार्थक हुआ। विगत तीस वर्षो में शोधपरक आलेखों के प्रकाशन और धार्मिक व सामाजिक उन्नयन के लिए जागरूकता को प्रोत्साहित करने वाले विचारों का प्रसारण **शोधादर्श** के माध्यम से किया जाता रहा है। **अहिंसा इन्टरनेशनल** द्वारा दिनांक 6 दिसम्बर को **शोधादर्श** के शोध और सामाजिक जागृति के सम्बन्ध में किये जा रहे कृतित्व को सम्मानित किया गया, यह एक स्पृहणीय उपलब्धि है और इसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे श्रद्धेय पितामह को जाता है।

श्रद्धेय डॉ. साहब का ''महावीर–निर्वाण–काल'' पर शोधपूर्ण लेख **प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार** पत्रिका के वर्ष 12, अंक 9, नवम्बर 2015, में प्रकाशित किया गया है। पत्रिका के सम्पादक डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' इसके लिए साधुवाद के पात्र हैं। लेख में यह इंगित नहीं किया गया है कि लेख कहां से उद्धृत किया गया है, जो अपेक्षित था। यह लेख डॉ. साहब द्वारा **भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ** में 3 नवम्बर 1975 को प्रकाशित किया गया था।

विद्वत्जनों से और चिन्तनशील पाठकों से यह अनुरोध है कि वह अपने वही लेखादि भेजें जो विशेष रूप से इस पत्रिका के लिए लिखे गये हों और जिनका अन्यत्र प्रकाशन न किया गया हो या किया जा रहा हो। लेख हिन्दी अथवा अंग्रेजी में लिखा जा सकता है। उसमें सन्दर्भ–स्रोत अवश्य सूचित किये जाने चाहिएं और वह टाइप के तीन–चार पृष्ठों से अधिक नहीं होना चाहिए।

जैन साहित्य, इतिहास और संस्कृति आदि पर जो शोधार्थी शोध कार्य कर रहें हैं, उनसे आग्रह है कि वह अपने शोध का सार–संक्षेप भेजें।

विगत तीस वर्षो में जिन लेखकों और पाठकों ने अपना सहयोग दिया है उन सभी को हम साधुवाद ज्ञापित करते हैं। यह अंक उन सभी को भेजा जा रहा है जिनका सहयोग हमें प्राप्त होता रहा है।

मैं अपने सम्पादक मण्डल के सदस्यों को और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के अध्यक्ष, पदाधिकारियों एवं सदस्यों को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूं।

नलिन कान्त जैन
सम्पादक

मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य

– डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

मंगलम् भगवान वीरो,
मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुन्दकुन्दाद्याः,
जैनधर्मोस्तु मंगलम्।।

अंतिम तीर्थंकर निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र वर्द्धमान महावीर (599–527 ई.पू.) की अनुवर्ति आचार्य–परम्परा में तथा जैन साहित्य के इतिहास में योगिराज कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। वह न केवल पुस्तक–साहित्य प्रणयन के लिए चलाये गये सरस्वती आन्दोलन या सारस्वत अभियान के सर्वाधिक उत्साही नेता थे, वरन् संभवतया उस युग के सर्वमहान ग्रन्थकार भी थे। यहां तक कि जैन परम्परा में स्वयं उनका नाम–स्मरण मंगलमय माना जाने लगा। वह भगवान महावीर की मौलिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करने वाले मूलसंघ के अग्रणी नेता थे, और कुन्दकुन्दान्वय के रूप में उनकी अपनी आम्नाय अनेक उत्तरवर्ती शाखा–प्रशाखाओं में विस्तरित होती हुई दूर–दूर तक प्रसार प्राप्त हुई।

अपनी गुरू परम्परा को अन्ततः कुन्दकुन्दाचार्य के साथ जोड़कर दिगम्बर आम्नाय के जैन मुनि गौरवान्वित होते रहे – कम–से–कम तीन प्रमुख प्राचीन संघ कुन्दकुन्दान्वय से ही सम्बद्ध रहे। श्री वीर निर्वाण की प्रारंभिक छः शताब्दियों में जिनवाणी का संरक्षण करने वाले श्रुतधर आचार्यो के अंतिम वर्ग में प्रायः सर्व प्रमुख, चतुरानुयोगान्तर्गत द्रव्यानुयोग को पुस्तकारूढ़ करने वाले सर्वप्रथम, जैन अध्यात्म–सरिता की साक्षात् गंगोत्री, भगवान कुन्दकुन्द की ख्याति रही है कि उन्होंने सम्पूर्ण भरतक्षेत्र में जिनवाणी की आपेक्षिक श्रेष्ठता प्रतिष्ठापित कर दी थी और उसे लोकप्रिय बना दिया था। अनेक उत्तरवर्ती ग्रन्थकार उनके ऋणी हुए, और विशेषकर परवर्ती टीकाकारों के लिए तो कुन्दकुन्द साहित्य उद्धरणों का कामधेनु सिद्ध हुआ। कुन्दकुन्द के अधिकांश क़थन सम्प्रदायवादातीत हैं, और विशेष रूप से उनके ग्रन्थराज **समयसार** का स्वाध्याय तो दिगम्बर,

श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि प्रायः सभी जैन सम्प्रदायों में तथा अनेक जैनेतरों द्वारा भी श्रद्धापूर्वक होता आया है।

नाम – उपनाम

उत्तरवर्ती साहित्य एवं शिलालेखों में इन आचार्य के लिए कई नाम या उपनाम प्रयुक्त हुए मिलते हैं। शिलाभिलेखों में सामान्यतया **कोण्डकुन्द** नाम प्राप्त होता है – उसी का संस्कृत रूप **कुन्द–कुन्द** है। देवसेन और जयसेन ने उनके लिए **पद्मनन्दि** नाम का प्रयोग किया है। 14वीं शती ईस्वी तथा उपरांत के कई अभिलेखों तथा ग्रन्थकारों ने **वक्रग्रीव, गृद्धपिच्छ** और **एलाचार्य** उनके उपनाम सूचित किये हैं। अन्य उपनाम **महामति** और **वट्टकेर** सुझाये गये हैं। आचार्य स्वयं अपने विषय में प्रायः कोई सूचना प्रदान नहीं करते – केवल उनकी **बारस–अणुवेक्खा** के अंत में कर्त्तारूप में 'कुन्दकुन्द' नाम प्राप्त है, और **बोधपाहुड** के अंत में वह स्वयं को भद्रबाहु का शिष्य रहा सूचित करते हैं।

आचार्य के जीवनचरित्र विषयक कुछ लोकानुश्रुतियां भी प्रचलित हैं, किन्तु वे मिथिक या काल्पनिक प्रतीत होती हैं, अतएव प्रायः विश्वसनीय नहीं है। इसी प्रकार, चारणऋद्धि या आकाशगामिनी विद्या, विदेहगमन, आदि कई चमत्कारिक शक्तियां भी उनमें रही बतायी जाती हैं, किन्तु उनके सत्यासत्य के विषय में कुछ भी कहना कठिन है।

गुरु

जहां तक गुरु का प्रश्न है, आचार्य स्वयं सूचित करते हैं कि उनके गुरु भद्रबाहु थे। किन्तु उनके टीकाकार जयसेन (1150 ई.) के अनुसार कुन्दकुन्द के गुरु कुमारनन्दि थे, जबकि नन्दिसंघ की एक पट्टावली के अनुसार कुन्दकुन्द के गुरु जिनचन्द्र थे जो स्वयं माघनन्दि के शिष्य और अर्हद्बलि के प्रशिष्य थे। इन तीनों आधारों में, पट्टावलियों, गुर्वावलियों आदि की भांति उसका अंतिम व्यवस्थीकरण एवं सम्पादन तो और भी बाद में हुआ होगा। मथुरा से प्राप्त ईस्वीसन् के प्रारम्भ के आसपास के एक शिलालेख में कुमारनन्दि नाम के एक जैनाचार्य का उल्लेख है। कुन्दकुन्द के समय तक भद्रबाहु नाम के दो आचार्य हो चुके थे, उनमें से कौन से अभिप्रेत हैं, इस सम्बन्ध में कुछ विवाद है, किन्तु ऐसा लगता है कि कुन्दकुन्द का आशय भद्रबाहु द्वितीय (ईसापूर्व 37–14) से है।

मूल आवास

इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि आचार्य कुन्दकुन्द दक्षिणात्य थे – उन का नाम कोण्डकुन्द द्रविडदेशीय प्रतीत होता है, और कन्नडी

प्रदेश के किसी ग्राम या नगर जैसा लगता है। ऐसे स्थलनामाश्रित साहित्यिक उपनामों का प्रचलन द्रविड देशों में रहा भी है और कई जैन गुरुओं के ऐसे नाम प्राप्त भी हैं, यथा तुम्बलूर ग्राम निवासी तुम्बलूराचार्य। उत्तरकालीन लेखकों ने तो स्पष्टतया कथन किया है कि आचार्य कुन्दकुन्द कोण्डकुन्द नगर के निवासी थे। आज भी गुन्तकल रेल स्टेशन से 6–7 किलोमीटर की दूरी पर स्थित इस नाम का एक ग्राम विद्यमान है जिसे इन्हीं आचार्य के जीवन से सम्बद्ध माना जाता है और कहा जाता है कि उन्होंने उक्त ग्राम की निकटवर्ती एक गुफा में तपश्चरण किया था। ऐसी ही एक अनुश्रुति उनका सम्बन्ध नन्दिपर्वत के साथ जोड़ती है।

समय

कुन्दकुन्दाचार्य का समय–निर्धारण भी पर्याप्त ऊहापोह का विषय रहा है। अनेक आधुनिक विद्वानों ने इस दिशा में प्रयास किये और चौथी शती ईसापूर्व से लेकर छठी शती ईस्वी पर्यन्त कई तिथियां सामने आई हैं। किन्तु, लोक प्रचलित अनुश्रुति के अनुसार वह 33 वर्ष की आयु में, विक्रम संवत् 49 (अर्थात् ईसा पूर्व 8) में आचार्य–पट्ट पर आसीन हुए, 52 वर्ष उनका आचार्यकाल रहा, और 85 वर्ष की वय में, सन् 44 ई. में उनका निधन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि वह आचार्य भद्रबाहु द्वितीय और आचार्य अर्हद्बलि के समसामयिक रहे। भिन्न–भिन्न पट्टावलियों में उक्त दोनों आचार्यो की तिथियां कुछ भिन्न–भिन्न हैं, जिनकी पूर्वावधि ईसापूर्व 53 और उत्तरावधि सन् 66 ई. प्राप्त होती है। ऐसा असन्दिग्ध रूप से प्रतीत होता है कि आचार्य कुन्दकुन्द न केवल 79 ई. में निष्पन्न दिगम्बर –श्वेताम्बर संघभेद से पूर्व हो चुके थे, वरन् मूलसंघ के नन्दि, सेन, सिंह, भद्र, देव आदि संघों में विभक्त होने से भी पहले हो चुके थे, और धरसेन–पुष्पदंत–भूतबलि द्वारा (लगभग 75 ई. में) **षट्खण्डागम–सिद्धांत** के रूप में **कम्म–पयडि–पाहुड** नामक आगम के पुस्तकारूढ़ किये जाने से भी पूर्व हो चुके थे।

साहित्यिक एवं शिलालेखीय अनुश्रुतियों में कुन्दकुन्द का उल्लेख सदैव उमास्वामि और समन्तभद्र के पूर्व हुआ है। उमास्वामि विरचित **तत्त्वार्थाधिगमसूत्र** के सुप्रसिद्ध टीकाकार देवनन्दि पूज्यपाद (लगभग 500 ई) समन्तभद्र का तो नामोल्लेख करते ही हैं और उनके उद्धरण भी देते हैं, कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से भी उद्धरण देते हैं। कुन्दकुन्द के परवर्ती जैनाचार्यो एवं ग्रन्थकारों की निर्णीत तिथियां यह प्रायः सुनिश्चित कर देती हैं कि स्वयं कुन्दकुन्द प्रथम शती ई. के मध्य से पूर्व ही हुए होने चाहिये। प्रोफेसर

ए. चक्रवर्ती ने कुन्दकुन्दाचार्य का समय प्रथम शती ई. निर्धारित किया, और डॉ. ए.एन. उपाध्ये ने विभिन्न मतों तथा प्राप्त साधन स्रोतों की विशद समीक्षा करके प्रायः उसी समय का समर्थन किया। कुन्दकुन्द की कृतियों में प्राप्त प्राकृत भाषा का रूप भी इसी मत की पुष्टि करता है। मथुरा का कुमारनन्दि विषयक पूर्वोक्त शिलालेख वर्ष 87 का है – संख्या–पाठ कुछ अस्पष्ट है और वह 67 हो सकता है। अतः लेख में ऐसा कोई संकेत नहीं है जिससे उसे कुषाणकालीन (78 ई. का पश्चाद्वर्ती) कहा जा सके; यह संभावना है कि उक्त वर्ष संख्या ईसापूर्व 66 में प्रारंभ होने वाले प्रथम शक संवत की हो, अर्थात् सन् ईस्वी 1 या 21 का वह लेख है। अतः यह संभव है कि कुन्दकुन्द का इन्हीं कुमारनन्दि के साथ साक्षात् सम्पर्क रहा हो और उन्हें वह गुरु तुल्य मानते हों।

डॉ. रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के कथनानुसार आचार्य कुन्दकुन्द उन प्राचीनतम दिगम्बर ग्रन्थकारों में से हैं जिनकी कृतियों का उल्लेख अनेक परवर्ती साहित्यकारों ने किया है। पीटरसन की रिपोर्ट में भी इन्हें एक अत्यंत प्राचीन एवं ख्यातिप्राप्त आचार्य रहा बताया गया है। वस्तुतः स्वयं कुन्दकुन्द तो अपने ग्रन्थों में किसी भी पूर्ववर्ती ग्रन्थकार का उल्लेख नहीं करते हैं जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि ऐसा कोई लेखक रहा ही नहीं। मूल द्वादशांग–श्रुतागम के साथ उनका सीधा सम्बन्ध असंदिग्ध प्रतीत होता है – उसकी ओर जब भी वह संकेत करते हैं, सहज सामान्य रूप में ही करते हैं। उनकी कृतियों का पारम्परिक आगमिक रूप इस तथ्य से भी प्रमाणित है कि उनमें अनेक गाथाएं श्वेताम्बर आगम सूत्रों से अभिन्न हैं – तीर्थंकरोत्तरकाल की प्राथमिक शताब्दियों में तो वैसे वाक्य अविभक्त पूरे संघ की समानरूप से सम्पत्ति थे, और जब संघभेद की भूमिका बनने लगी तो दोनों दलों ने उनके संरक्षण का स्वतन्त्र रूप से प्रयास किया। इस सब विवेचन से यह स्पष्ट है कि भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रथम शती ई. के पूर्वार्ध में हुए हैं, और उनका आचार्यकाल ईसापूर्व 8 से लेकर सन् 44 ई. पर्यन्त रहा।

रचनाएं

आचार्य के विषय में प्रचलित अनुश्रुति है कि मौखिक द्वार से प्रवाहित होता आया द्वादशांग–श्रुतागम का जो ज्ञान उन्हें गुरुपरम्परा से प्राप्त हुआ था, उसी के उपसंहार के रूप में अथवा उसे ही आधार बनाकर उन्होंने प्राकृत भाषा में अपने छोटे–बड़े 84 पाहुडों (प्राभृतों) की रचना की थी। उनकी कृतियों में कहीं–कहीं जैनेतर सन्दर्भों का भी संकेत है,

और कभी–कभी पूर्वकाल में हुए कतिपय व्यक्तिविशेषों के भी उल्लेख हैं; ऐसे व्यक्ति ऐतिहासिक रहे हो सकते हैं। आधुनिक युग में उनकी प्रायः सभी उपलब्ध रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, और उनके प्रमुख ग्रन्थों के विस्तृत समीक्षात्मक प्रस्तावनाओं से युक्त सुसम्पादित संस्करण प्राप्त हैं। कई शोधछात्रों के कुन्दकुन्द–साहित्य के दार्शनिक, सांस्कृतिक, भाषावैज्ञानिक आदि अध्ययन भी शोधप्रबन्धों के रूप में विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द की सुविदित एवं उपलब्ध कृतियां निम्नोक्त हैं:– 1 **समयसार**, 2 **प्रवचनसार**, 3 **पंचास्तिकायसार** – ये तीनों समुच्चय रूप से **प्राभृतत्रय** या **सारत्रय** भी कहलाते हैं, जिनकी प्रामाणिकता एवं महत्ता जैन परम्परा में वैसी ही मान्य है जैसी कि वेदान्तियों में **प्रस्थानत्रय** की है। 4 **नियमसार**, 5 **रयणसार** (इस ग्रन्थ का उपलब्ध रूप कुछ विवादास्पद है), 6–15 **अष्टपाहुड** कुन्दकुन्द रचित आठ प्राभृतों का संग्रह है, उनके कुछ अन्य पाहुड भी शास्त्र भंडारों में प्राप्त हुए हैं। दशपाहुडों का भी एक संकलन प्रकाशित है। इन पाहुड ग्रन्थों में यत्र–तत्र कतिपय उपयोगी ऐतिहासिक सूचनाएं भी प्राप्त हैं। 16 **बारस अणुवेक्खा** (द्वदशानुप्रेक्षा), 17–26 **दशभक्ति**। इनके अतिरिक्त, मुनिधर्म के प्रतिपादक प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ **मूलाचार** के कृतित्व का श्रेय भी कुछ विद्वान कुन्दकुन्द को ही प्रदान करते हैं – उसके कर्त्ता के रूप में सामान्यतया किन्हीं वट्टकेराचार्य की प्रसिद्धि है, जो कुन्दकुन्द का ही एक उपनाम रहा अनुमान किया जाता है। इन्द्रनन्दि के अनुसार कुन्दकुन्द ने पुस्तकारूढ़ आगमों के एक अंश पर **परिकर्म** नाम की टीका भी रची थी, किन्तु विबुध श्रीधर के अनुसार उस टीका के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य के एक शिष्य कुन्दकीर्ति थे। यह मत सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है। तमिल देश में प्रचलित एक अनुश्रुति के अनुसार विश्व–प्रसिद्ध तमिल नीतिकाव्य **कुरल** या **थिरुकुरल** जो तमिल वेद भी कहलाता है, के रचयिता भी यही कुन्दकुन्दाचार्य अपरनाम एलाचार्य थे – उन्होंने इस ग्रन्थराज को अपने गृहस्थ शिष्य तिरुवलवर के माध्यम से तमिल–संगम में प्रविष्ट कराया था, बताया जाता है। वस्तुतः कुन्दकुन्दादि जैनाचार्यो की प्राचीन तमिल–संगम की साहित्यिक प्रवृत्तियों में प्रभूत प्रेरणा एवं सक्रिय योगदान रहा है, यह तथ्य प्रायः सर्वत्र स्वीकृत है।

कुन्दकुन्द साहित्य के संस्कृत टीकाकारों में अमृतचन्द्राचार्य (10वीं शती ई.), जयसेन (1150 ई.), बालचन्द्र (1176 ई.), पद्मप्रभ मलधारिदेव (1185 ई.), श्रुतसागर (लगभग 1500 ई.),आदि, और हिन्दी

टीकाकारों में पांडे रूपचन्द, पं. बनारसीदास, पं. जयचन्द छाबड़ा आदि उल्लेखनीय हैं। कुन्दकुन्द के अद्यावधि ज्ञात एवं उपलब्ध सभी ग्रन्थ प्रकाशित हैं, कुछ के तो कई–कई संस्करण तथा कई देशी–विदेशी भाषाओं में अनुवादादि भी प्रकाशित हो चुके हैं – **समयसार** के सैकड़ों संस्करण एवं अनुवादादि हैं।

अनेक पुरातन ग्रन्थकारों आदि ने आचार्य का अति पूज्यभाव से स्मरण किया है, और यह उक्ति प्रचलित हो गई कि 'हुए हैं, न हैं, न होहिंगे गुरू कुन्दकुन्द से'।

(जैन धर्म की दिगम्बर आम्नाय में आचार्य कुन्दकुन्द का अत्यंत प्रतिष्ठित स्थान है। कीर्तिशेष श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने अपने शोधग्रन्थ **The Jaina Sources of the History of Ancient India** के अध्याय 7 (The Pioneers and Early Authors) में कुन्दकुन्द के विषय में विशद विवेचन किया है। उक्त ग्रन्थ प्रथमतः 1964 में प्रकाशित हुआ था और उसका दूसरा संस्करण 2005 में प्रकाशित हुआ है।

"मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य" शीर्षक से उपरोक्त लेख **शोधादर्श** के प्रथम अंक में फरवरी 1986 में मुख्य लेख के रूप में डॉ. साहब द्वारा प्रकाशित किया गया था। यह विवेचन आज भी प्रासंगिक और मननीय है। कुछ विद्वानों द्वारा साम्प्रदायिक पक्षधरता के व्यामोह में कुन्दकुन्द के विषय में विवाद उपस्थित किया जा रहा है जो उचित नहीं है।

मंगल श्लोक में 'कुन्दकुन्दाद्याः' और 'कुन्दकुन्दार्यो' पाठभेद मिलते हैं परन्तु उससे श्लोक के मांगलिक आशय में अंतर नहीं पड़ता है।

– सम्पादक)

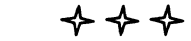

तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन

– श्री अजित प्रसाद जैन

त्रिकाल–वन्द्य महावीर प्रभु को ईसापूर्व 558 में वैशाख शुक्ल 10 को जम्भवी ग्राम के बाहर ऋजुकूला नदी के तट पर शाल्मली वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे निःशल्य, शुद्ध बुद्ध हो गये। उसी दिन प्रथम समवशरण की रचना इन्द्र ने केवलज्ञान स्थल पर की किन्तु उसमें देव व पशु–पक्षी ही रहे तथा मनुष्य नहीं आये। भगवान की वाणी नहीं खिरी। मानव श्रोताओं के अभाव में दिव्य ध्वनि भी निरर्थक रहती क्योंकि मोक्ष मार्ग पर चलने की क्षमता केवल मानव में ही है।

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को महापंडित इन्द्रभूति गौतम ने अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने विशाल शिष्य परिवार सहित भगवान का शिष्यत्व स्वीकार किया। अग्निभूति, वायुभूति आदि अन्य महापंडित भी भगवान के शिष्य बने तथा गुरू–पूर्णिमा पर्व का लोक में प्रचलन हुआ।

श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को विपुलाचल पर्वत पर, (उपाध्याय अमरमुनि के अनुसार पर्वत की उपत्यका में गुणशील चैत्य के उद्यान में), वीर प्रभु का प्रथम समवशरण लगा। यह धर्म सभा भी बड़ी अनोखी थी। राजा, रंक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी एक समूह में सभी भेदभाव मिटाकर कंधे से कंधा मिलाए भगवान की दिव्य ध्वनि का अमृत पान कर रहे थे। महापंडित गणधर इन्द्रभूति गौतम भगवान द्वारा निरूपित धर्म सिद्धान्तों की सरल जन भाषा में विस्तार से व्याख्या कर रहे थे। वाग्देवी का भूतल पर अवतरण हुआ।

भगवान महावीर ने अहिंसा धर्म की लोक में स्थापना की, धर्म के नाम पर यज्ञों में की जाने वाली हिंसा एवं अन्य मूढ़ताओं की अनैतिकता से जनता को परिचित कराया, धर्म के क्षेत्र में अंध–श्रद्धा व रूढ़िवादिता पर कठोर प्रहार किया तथा धर्म को विज्ञान का धरातल प्रदान किया। उन्होंने मानव को वैचारिक दासता से मुक्त किया। उन्होंने उद्घोष किया कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो, जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल पाओगे, किसी देवी–देवता या ईश्वर की कृपा या रोष से तुम्हारे कर्म फल में कोई परिवर्तन नहीं होने वाला। इस सृष्टि का कर्ता धर्ता, सुख दुख देने वाला क़ोई ईश्वर नहीं। तुम स्वयं अनन्त शक्ति के स्रोत हो तथा तुम में स्वयं में परमात्म स्वरूप प्राप्त करने की शक्ति विद्यमान है। पुरुषार्थ

करो, दुख सुख में, वन में, भवन में, इष्ट वियोग अनिष्ट योग में समभाव रखो। सब प्राणी समान हैं, किसी को दुख न पहुंचाओ, सब से मैत्री भाव रखो, सब का उपकार करो, यही मानव धर्म है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह का त्याग ही वास्तविक धर्म है। जीवन में नैतिकता का पालन करना ही धर्म है। जैन धर्म के सिद्धान्त अति प्राचीन होते हुए भी अत्याधुनिक हैं।

———————

(वर्तमान में भगवान महावीर का शासन प्रवृत्त है जो उनकी प्रथम देशना से प्रारंभ हुआ था। स्मृतिशेष श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन ने भगवान महावीर के शासन के स्वरूप और महत्व को सरल सहज शैली में **शोधादर्श–12** में प्रस्तुत किया था। यह शाश्वत है और आज भी प्रासंगिक है। व्यावहारिक जीवन में भगवान महावीर की शिक्षाओं का अनुपालन यदि किया जाये तो संसार में संघर्ष और हिंसा का वातावरण समाप्त हो सकता है। सामयिक परिदृश्य में जो अशांति व्याप्त है उसके प्रतिकार का उपाय भगवान महावीर की शिक्षाओं में निहित है जो उदारवादी दृष्टिकोण और समताभाव को प्रेरित करती हैं। – सम्पादक)

✧✧✧

श्री महावीर वचनामृत

लोगस्सारं धम्मो

लोक का, अर्थात् मनुष्य जीवन का, सार धर्म है।

मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो

मोह एवं क्षोभ से रहित परिणमन ही आत्मा का धर्म है।

रयणत्तय च धम्मो

धर्म रत्नत्रय (समीचीन श्रद्धान, समीचीन ज्ञान और समीचीन आचरण) रूप है।

चत्तारि धम्मदारा – खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे

धर्म के चार द्वार हैं – क्षमा, मैत्री, सरलता और मृदुता।

दंसणमूलो धम्मो

धर्म का मूल दर्शन (समीचीन दृष्टि या सम्यक्त्व) है।

णाणे य नाइवाएज्जा, अदिन्नांपि य नायए।
साइयं न मुसंवूया, एस धम्मे वुसीमओ।।

किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, किसी की भी बिना दी हुई वस्तु न ले, विश्वासघातक असत्य न बोले – यह आत्मनिग्रही जनों का धर्म है।

✧✧✧

अध्यात्म–रसिक
कविवर भगवतीदास

– श्री रमा कान्त जैन

रीतिकाल में रहकर उसकी रीति से कुछ भिन्न रीति अपनाने वाले और अध्यात्मरस की गंगा बहाने वाले कवियों की पंक्ति में ही आते हैं आगरा निवासी भगवतीदास जिन्होंने आचार्य केशवदास की श्रृंगारिक कृति **रसिक–प्रिया** के सम्बन्ध में कटूक्ति की थी –

शोणित हाड़ मांसमय मूरत,
तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरख कर केशव,
रसिक–प्रिया तुम कहा करी?

उन्होंने अपनी रचनाओं में 'भैया', 'भविक' और 'दास किशोर' उपनामों का प्रयोग किया है, किन्तु सबसे अधिक प्रयोग हुआ है 'भैया' का। इसीलिये वह **भैया भगवतीदास** के नाम से अधिक जाने जाते हैं। उनके द्वारा 67 रचनाएं रची बताई जाती है जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं – **चेतन कर्म चरित्र, पुन्य पच्चीसिका, उपदेश पच्चीसी, पंचेन्द्रिय संवाद, सुवा बत्तीसी, स्वान बत्तीसी, मन बत्तीसी, वैराग्य पच्चीसिका, परीषहजय** और **परमात्मशतक।** ये सभी रचनाएं **ब्रह्म विलास** नाम से संग्रहीत और प्रकाशित हुईं।

कवि क़ी जन्म–मृत्यु तिथि तथा जीवन की विशद जानकारी तो नहीं मिलती है, किन्तु यह पता चलता है कि वे ओसवाल जैन, कटारिया गोत्री, दशरथ साहू के पौत्र और लालजी के पुत्र थे। हिन्दी व संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ ही उर्दू, फारसी, गुजराती, मारवाड़ी, बंगला आदि भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार रखते थे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी उच्चकोटि के सन्त थे। किसी राजाश्रय में या साहित्य प्रेमी के आश्रम में उन्होंने अपनी रचनाएं रची हों इसकी जानकारी तो नहीं मिलती, किन्तु उनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वान्तःसुखाय और परहित भावना से प्रेरित होकर रची गई हैं।

विक्रम संवत् 1711 में पं. हीरानन्द ने आगरा में **पंचास्तिकाय** का हिन्दी पद्यानुवाद किया था और उन्होंने अपनी उस पुस्तक में आगरा की विद्वत् मण्डली में 'तहां भगौतीदास है ग्याता' उल्लेख किया है। इस पर

बाबू कामता प्रसाद जैन एवं डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने यह संभावना व्यक्त की कि वह उल्लेख भैया भगवतीदास के सम्बन्ध में है। इसका अर्थ हुआ कि वह संवत् 1711 में उल्लेखनीय हो चले थे। किन्तु उनकी रचनाओं में संवत् 1731 से संवत् 1755 तक का उल्लेख मिलता है जिससे लगता है कि उनका साहित्य–साधना काल केवल वही पच्चीस वर्ष की अवधि रहा।

यदि यह माना जाये कि भगवतीदास संवत् 1711 में उल्लेखनीय हो गये थे तो यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि वह संवत् 1731 तक क्या करते रहे? यह शंका भी उत्पन्न होती है कि कहीं पं. हीरानन्द द्वारा उल्लिखित भगवतीदास कोई अन्य व्यक्ति तो नहीं है। इसका समाधान हमें डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के 'ब्रज के जैन साहित्यकार' (**ब्रजभारती,** फाल्गुन सं. 2013) में मिल जाता है जिससे स्पष्ट है कि वह उल्लेख 'भैया भगवतीदास' के विषय में नहीं, अपितु 'पं. भगौतीदास' के विषय में है जो बुढ़िया, जिला अम्बाला, के निवासी, बंसल गोत्रीय अग्रवाल जैन थे और जिन्होंने **सीतासतु, लघु सीतासतु, अनेकार्थ नाममाला, मृगांक लेखा चरित्र** (अपभ्रंश काव्य) तथा अन्य कई आध्यात्मिक एवं भक्तिपूर्ण रासे, व्रत कथाएं, विनती, ढमाल इत्यादि की रचना की थी और जो घूमते फिरते हुए आगरा आकर कवि बनारसीदास की आध्यात्मिक गोष्ठी में भी सम्मिलित रहे थे। डॉ. रामकुमार जैन ने भी अपनी **अध्यात्म पदावली** में इस बात की पुष्टि की है।

भैया भगवतीदास की रचनाएं भावपक्ष व कलापक्ष, दोनों दृष्टि से उच्चकोटि की हैं। उनमें अध्यात्म, नीति और वैराग्य की बहुत ही ऊंची और गम्भीर व्यंजना हुई है। निम्नलिखित पद में आत्मा रूपी परदेशी का क्या विश्वास, इस को बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया है –

कहा परदेशी को पतियारो,
मन माने तब चलै पथ को,
सांझ जिनै न सकारी।
सबै कुटुम्ब छॉड़ी इतही पुनि
त्यागि चलै तन प्यारौ।।1।।
छूर दिसावर चलत आपही,
कोई न कोई राखन हारौ।
कोउ प्रीति करो किन कीटिक,
अन्त हो गयी न्यारो।।2।।
धन सौ राचि धरम सौ भूषत,
झूलत मोह मंझारो।

इहि विधि काल अनन्त गमायौ,
पायो नहीं भव पारो।।3।।
सांचे सुख सौ विमुख होत है,
भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहु रे 'भैया',
आप ही आप संवारो।।4।।
कहा परदेशी को पतियारो।

अपने–अपने राग–रंग में लीन लोक का बड़ा सजीव चित्रण उन्होंने निम्नलिखित कवित्त में किया है –

कोउ तो करे किलोल भामिनी सो रीझ–रीझ,
वाही सो सदेह करे काम राग अंग में।
कोउ तो लहै आनन्द लक्ष कोटि जोरि–जोरि,
लक्ष लक्ष मान करै लच्छि की तरंग में।
कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै,
मो समान दूसरो न देखो कोउ जंग में।
कहै कहा 'भैया' कछु कहिवे की बात नाहिं,
तब जग देखियतु राग रस रंग में।

उनका निम्नलिखित सवैया तुलसीदास की **कवितावली** के सवैया की याद दिलाता है –

लाई हों लालन बाल अमोलक,
देखतु तौ तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहुं तिहूं लोक में सुन्दर,
और नारि अनेक घनी है।
याही तै तोहि कहूं मितचेतन,
याहु की प्रीति जो तोसों सनी है।
तेरो ओर राधे की रीझ अनन्त,
सो मोपे कहूं यह बात–गनी है।

भैया भगवतीदास की काव्य भाषा ब्रज है, किन्तु उसमें कहीं–कहीं उर्दू और गुजराती का पुट लक्ष होता है। थोड़े शब्दों में गहन अर्थ और परिष्कृत भावनाओं का निरूपण करने में निपुण भगवतीदास भाषा को भावानुकूल ढालने में पटु थे। उनकी भाषा प्रांजल, धारावाहिक और प्रसादगुण–युक्त है। उन्होंने अपनी कविता सुन्दरी को विभिन्न छन्दों में यथोचित शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से सजाया और संवारा है। छन्दों

में कवित्त तथा अलंकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग उन्हें विशेष प्रिय रहा प्रतीत होता है। सरसता और सरलता उनके काव्य का जीवन रहा। यही कारण है कि उनकी रचनाएं बड़ी प्रभावोत्पादक हैं। निम्नलिखित कवित्त में प्रवाह में तीव्रता लाने के लिए की गई 'री' की आवृत्ति देखने योग्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कवि मानवीय भूलों का परिणाम अंगुली निर्देश द्वारा बता रहा हो –

अचेतन की देहरी, न कीने यास्ते नेह री,
ये औगुन की गेरी मरम दुख भरी है।
याहो के सनेहरी न आवे कर्म छेहरी,
सुपावे दुख तेहरी जे याकी प्रीति करो है।
अनादि लगी जेहरी जु देखत ही खेहरी,
तू जामें कहा लेहरी करोगन की दरो है।
कामगज केहरी, सुरानदेश केहरी,
तू यामें दृग देहरी जो मिथ्या मति दरी है।

अपने कवित्तों में भगवतीदास ने मधुर ध्वनियों के साथ लय और ताल का सुन्दर समावेश किया है। मात्रिक छन्दों में मात्राओं और वर्णो की संख्या के साथ–साथ उन्होंने विराम और गतिविधि का भी ध्यान रखा है। साथ ही ध्वनि और अर्थ में साम्य का विधान भी उन्होंने अपने छन्दों में किया है।

घड़ी की टिक–टिक ध्वनि मानव को क्या समझाना चाहती है इस सम्बन्ध में कवि की कल्पना निम्न कवित्त में पठनीय है –

सुनि रे सयाने तर कहां करै, 'घर–घर',
तेरो जो शरीर घर धरी ज्यों तरतु हैं।
छिन–छिन छीजै आयु जल जैसे धरी जाय,
ताहू को इलाज कछु उरह धरतु हैं।
आदि जे सहें हैं तेतौ वादि कछु नाहि तोहि,
आगे कहौ कहा गति काहे उछरतु है।
घरी एक देखै ख्याल घरी के कहां है चाल,
घरी–घरी घरियाल शोर यों करतु है।

निम्नलिखित दोहे में कवि ने राजा और रंक को समान कर दिया है–

शयन करत हैं रयन में, कोटि ध्वण अरु रंक।
सुपने मैं दौउ एकके, बरते सदा निशंक।।

'काम' और 'तारी' शब्दों को लेकर यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग निम्नलिखित दोहों में किया गया है –

मैं न काय जीत्यो बली, मैं न काय रसलीन।
मैं न काम अपनो कियो, मैं न काम आधीन।।
तारी पी तुम भूलकर, तारी तब रसलीन।।
तारी खोजहूं ज्ञानकी, तारी पति वरलीन।।

भैया भगवतीदास ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का रम्यरूप भावों द्वारा संवारा है। उन्होंने प्रकृति चित्रण को किसी मनःस्थिति विशेष की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है –

घूमन के थौरहर देख कहा गर्व करै,
ये तो छिन माहि जाहि पोव परसन ही।
संध्या के समान रंग देखत ही होय भंग
दीपक पतंग जैसे काल गरसत हो।।

ग्रीष्म और वर्षा का निम्न चित्रण कवि ने अपनी अभीष्ट मानसिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए किया है –

ग्रीष्म में धूप परै, तामें भूमि भारी जरै,
फूला है आक युनि अतिहि गमहि कै।
वर्षाऋतु मेघ झरै तामे वृक्ष केई फरै,
जरत जलास अघ आपुहि तै डहि कै।

अध्यात्म–रसिक भगवतीदास के शब्दों में आत्मज्ञानी की स्थिति निम्नवत् है –

जबते अपनी जो आयु लख्यो, तबते जु गिटी दुविधा मनकी।
यों शितल चित्त भयो तबहि सब, छांड़ दई ममता तन की।
चिन्तामणि जब प्रगटौ घर में, तब कौन जु चाह करै धन की।
जो सिद्ध में आपु में फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जन की।

भैया भगवतीदास और उनकी रचनाओं से हिन्दी जैन जगत तो अल्पाधिक परिचित है, किन्तु सामान्य हिन्दी पाठक उनसे व हिन्दी भारती को प्रदत्त उनके सुभाषितों से प्रायः अपरिचित है। पं. नाथुराम प्रेमी, श्री मूलचन्द वत्सल, बा0 कामताप्रसाद, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन और डॉ. रामकुमार जैन इत्यादि विद्वानों द्वारा इनके सम्बन्ध में प्रकाशित सामग्री अभी जैनेतर हिन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ नहीं हो सकी है और इनकी कृतियों का हिन्दी जगत में सम्यक् मूल्यांकन होना शेष है।

(हिन्दी के रीतिकालीन कविवर भगवतीदास का यह परिचय स्मृतिशेष श्रद्धेय श्री रमा कान्त जैन ने **'जैन संदेश शोधांक–41'** में 31 मई 1979 को प्रस्तुत किया था। –सम्पादक)

मैं देह के मकान में

— श्री राजीव कान्त जैन

भ्रम के भाव में, तथ्य के अभाव में
सुख की चाह में, दुख की थाह में
रोशनी की राह में, तम के स्याह में मैं भटकता गया।

जड़ की प्रकृति में, चेतन की गति में
जीवन की अवस्था में, मृत्यु की व्यवस्था में
अस्तित्व के प्रश्न में, प्रश्न के वन में मैं उलझता गया।

तन के ताप में, धन के जाप में
मन के उद्वेग में, समय के वेग में
मोह के पाश में, माया के रास में मैं जकड़ता गया।

सौंदर्य के बोध में, पी के अनुरोध में
यौवन के वैभव में, किलकारते शैशव में
काम के प्रवाह में, दायित्व के निर्वाह में मैं बहता गया।

धन की चाह में, नाम की वाह में
गरीब की आह में, पड़ोसी की डाह में
मैं के उन्माद में, मन के प्रमाद में मैं रहता गया।

वय की कगार में, जीवन की पगार में
खर्च सब बाजार में, छूटा सब संसार में
जाना तब ज्ञान में, मैं देह के मकान में मैं सुलझता गया।

चीफ कम्यूनीकेशन इन्जीनियर, ईस्ट कोस्ट रेलवे, भुबनेश्वर

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि एवं उसके समीपस्थ जैन मंदिर व जैन स्मारक

– प्रो. प्रकाश चंद्र जैन

डॉ. जी.वी. रंगनाथ और श्री टी. सूर्य प्रकाश ने **Jain Journal,** जनवरी 1998, में "आन्ध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में स्थित जैन मंदिरों व स्मारकों" के बारे में एक अत्यंत महत्वपूर्ण व शोधपरक लेख लिखा था। मैं यहां याद दिला दूं कि वर्तमान में यहां जैन आबादी नहीं है; परन्तु वहां कभी जैन दर्शन व जैन कला के नायाब केन्द्र थे। आन्ध्र प्रदेश में जैन धर्म व जैन संस्कृति को विस्मृत कर दिया गया है जब कि 13वीं सदी तक यहां जैन धर्म व संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। विद्वान लेखक द्वय के अनुसार आन्ध्र प्रदेश के पश्चिमी भाग में कर्नाटक से लगे जिला अनंतपुर में अनेक स्थानों पर ऐसे पुरातात्विक, साहित्यिक व शिलालेखीय साक्ष्य मौजूद हैं जो यह कहने के लिए पर्याप्त हैं कि प्राचीन व मध्य काल में यह जिला जैन धर्मावलंबियों का गढ़ रहा होगा। यहां अनेक स्थानों पर जैन संस्कृति की प्रतीक प्राचीन इमारतें, जैन मंदिर, मठ आदि मौजूद हैं। अनेक स्थानों पर तो आज भी यहां के लोग जैन मूर्तियों की पूजा करते हैं। वे इन्हें विशेषकर सन्यासी देवता के रूप में पूजते हैं। इन मूर्तियों की पूजा वे विशेषकर सन्तान प्राप्ति हेतु व अच्छी वर्षा की प्राप्ति हेतु करते हैं।

1 आचार्य कुंन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि कोन–कोन्डल – अनंतपुर जिले को यह सौभाग्य प्राप्त है कि इसी जिले में जैन धर्म के सर्वप्रमुख प्राचीन आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्म भूमि रही है। न केवल यह उनकी जन्म भूमि रही थी उन्होंने यहीं तपस्या रत रहकर अनेक अमूल्य जैन ग्रन्थों की रचना भी की थी। कभी यह ग्राम व इसके आसपास का भूभाग अति वैभवशाली व समृद्ध जैन संस्कृति का केन्द्र रहा था। यह ग्राम वर्तमान में अनंतपुर जिले के उरावकोंडा तालुका में आता है और वर्तमान का यह ग्राम गुन्तकल रेलवे स्टेशन से मात्र 8 किलोमीटर की दूरी पर उरावकोंडा जाने वाली सड़क पर स्थित है। आधुनिक जैन व जैनेतर शोधकर्ता इस बात पर पूर्ण सहमत हैं कि इस ग्राम में पहाड़ी पर आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी निवास करते थे और तपश्चरण करते थे।

वर्तमान में इस स्थान की अधिकांश जैन पुरा सम्पदा यहां स्थित पहाड़ी पर विद्यमान है जिसे आज रसासिद्दुला गुट्टा के नाम से जाना जाता है। तेलुगु भाषा में इस शब्द का तात्पर्य 'रसायन–विद्या (कीमियागिरी) की पहाड़ी' होता है। इस पहाड़ी पर वर्तमान में बिना छत का एक जिनालय स्थित है जिसमें कायोत्सर्ग मुद्रा में दो तीर्थंकर प्रतिमायें विराजमान हैं। इन प्रतिमाओं के सिरपर तीन छत्र छाया किये हैं। प्रतिमा के परिकर में शासन देवता सेवा में खड़े हैं। इतिहासकार इन प्रतिमाओं को 13वीं शती का मानते हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में हुए माने जाते हैं। इसी काल से इस विस्मृत महान तीर्थक्षेत्र के आसपास जैन धर्म की मजबूत पकड़ रही होगी। शिलालेखीय प्रमाण इस बात को पुष्ट करते हैं कि इस स्थान का आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी के कारण प्राचीन काल में जैन धर्मावलंबियों में विशिष्ट महत्व था। 11वीं शती तक यह पुनीत स्थल जैनियों का प्रमुख तीर्थ रहा। चूंकि यह स्थान आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि है व जैनियों का एक प्रमुख तीर्थ था, इसीलिये श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के शिलालेखों में भी इस पावन भूमि का उल्लेख मिलता है।

किन्तु मुझे बड़े ही दुख व खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि वर्तमान जैन समाज अपने नाम के लिये व नये–नये क्षेत्रों की रचना में सहयोग के लिये तो करोड़ों रुपया खर्च करता है, परन्तु ऐसे पावन पुनीत क्षेत्र के विकास व उसे प्रकाश में लाने हेतु एक पैसा भी खर्च नहीं किया जाता। बड़ी–बड़ी धार्मिक संस्थायें व क्षेत्र रक्षण कमेटियों को चाहिये कि वे इस स्थल को पुनः वैसा ही गौरवशाली तीर्थ बनायें जैसा कि वह मध्य काल तक रहा था क्योंकि यहीं रहकर आचार्य श्री ने जैन धर्म के अनुपम ग्रन्थों की रचना की थी व जैन समाज को अमूल्य निधियों के रूप में उन्हें भेंट में दिया था। वर्तमान जैन समाज का यह दायित्व बनता है कि वह न केवल इस तीर्थक्षेत्र बल्कि दक्षिण भारत (तमिलनाडु आदि) में स्थित अन्य जैन तीर्थ क्षेत्रों के विकास के लिये भी आगे आये। हमारे पूज्य वर्तमान आचार्यो व साधुओं को भी इस धरोहर को बचाने के लिये आगे आना चाहिये क्योंकि वर्तमान में इस क्षेत्र में कोई भी जैन अनुयायी निवास नहीं करता है।

2 **अमर पुरम्** – यह तीर्थ अनंतपुर जिले के मदकसीरा तालुका में स्थित है। यह क्षेत्र भी कभी जैन धर्मावलंबियों का प्रसिद्ध क्षेत्र रहा है। यहां 13वीं शती में ब्रह्मजिनालय की स्थापना हुई थी। इस जिनालय में

पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान है। मूलसंघ, बेसिया गण, पुस्तक गच्छ से संबंधित बालेन्दु मालाधारी व अंगलावली नाम के सन्तों ने इस जिनालय को मूर्त रूप दिया था। 1278 ई. का शिलालेख यह बतलाता है कि इस जिनालय के लिये ताम्रोद हल्ली में किसी मल्लिसेट्टी ने 2000 पेड़ों के साथ भूमि दान में दी थी। इसी की आय से इस जिनालय के पुनरुद्धार में मंडप की पत्थर की नींव, गोपुर, बंदनमाला, मानस्तंभ, संपूर्ण वाहन व मकर तोरण आदि की रचना की गई थी। यहां अनेक निसिधि (स्मारक) भी हैं। यह ब्रह्मजिनालय भग्न अवस्था में गांव से 2 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। गांव के मध्य में भी एक जिनालय स्थित है।

3 पत शिवरम – यह स्थान भी अनंतपुर जिले के मदकसीरा तालुका में ही स्थित है। 1185 ई. के शिलालेखीय प्रमाण के अनुसार यह ग्राम जैनियों का पवित्र स्थल था। मूलसंघ, देसी गण, पुस्तक गच्छ के आचार्य श्री वीरनंदी सिद्धांत–चक्रवर्ती के शिष्य पद्मप्रभ मलधारीदेव की यह तपस्थली रहा था। उन्होंने आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थ **नियमसार** पर **तात्पर्यवृत्ति** नामक टीका लिखी थी।

4 पेनुकोण्डा – एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि भट्टारक श्री जिनभूषण जी महाराज इस स्थान पर स्थित पार्श्वनाथ जिनालय के पास निवास करते थे। उस समय चार प्रमुख जैन विद्या के केन्द्र थे जिनमें एक पेनुकोण्डा था। शेष तीन विद्या स्थान कोल्हापुर, दिल्ली व जिनकांची में स्थित थे। वर्तमान में यहां दो भव्य जिनालय स्थित हैं जिनमें से एक को अजितनाथ जिनालय व दूसरे को श्री पार्श्वनाथ जिनालय के नाम से जाना जाता है। ये दोनों जिनालय विजयनगर शैली में निर्मित हैं किन्तु इनके शिखर दक्षिण भारतीय शैली के हैं।

5 थागरकुण्ड – अनंतपुर जिले में धर्मवरम के पश्चिम में कुछ मील दूर थागरकुण्ड स्थित है। यहां स्थित एक छोटी किलानुमा आकृति को स्थानीय लोग भगवतुला गुट्ट कहते हैं। यहां पहाड़ी पर स्थित मंदिर में विद्यमान शिलालेख में यह उल्लेख है कि यहां स्थित चन्द्रप्रभु जिनालय की पूजा व व्यवस्था हेतु विक्रमादित्य 6ठे के पुत्र कुमार तैलव ने भूमि व बगीचे दान में दिये थे। इस स्थान पर पद्मनन्दी सिद्धांतदेव प्रमुख सन्त थे।

6 कम्बादुर – अनंतपुर जिला मुख्यालय से यह स्थान 82 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहां 3 जिनालय स्थित हैं। इनमें सीढ़ीदार पिरामिड आकार के शिखर है। मध्य भाग का जिनालय जीर्ण हालत में है। यद्यपि इस जिनालय में नालगोंडा जिले के भोटिगुल्ल मंदिर की तरह गर्भगृह में

कोई प्रतिमा विराजमान नहीं है, फिर भी यहां इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि यह पहले भव्य जिनालय रहा है। यह मंदिर दक्षिणाभिमुख है। इसका विमान दर्शनीय है। इस जिनालय में 6 तल हैं। इसका दरवाजा छोटा व वर्गाकार है। शिखर गुम्बद के आकार का बना है। शिखर में चारों ओर जैन तीर्थंकर प्रतिमायें विराजमान हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि आमेर के किले के नीचे स्थित झूंठाराम के मंदिर के शिखर के चारों ओर जैन प्रतिमायें हैं। इस जिनालय में गर्भगृह, अंतराल व मुख मंडप है। इसका मुख मंडप क्षतिग्रस्त है। गर्भगृह में एक ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में कुछ प्रतिमायें विराजमान हैं।

यहां स्थित दो अन्य मंदिरों को क्रमशः अकम्मावरी गुडी व मल्लिखार्जुन स्वामी मंदिर कहते हैं। मल्लिखार्जुन स्वामी मंदिर पहले जैन मंदिर था जैसा कि आलेखों और दस्तावेजों से विदित होता है तथा मंदिर की उत्तरी दीवाल पर भी जैन चिन्ह स्पष्ट देखे जो सकंते हैं, किन्तु अब यह मंदिर शैवों के कब्जे में है। पुरातात्विक दृष्टि से यह मंदिर 9वीं शती का है।

7 रत्नगिरि – प्राचीन काल में जैन मंदिरों के पास मठ बनाने की प्रथा थी, जिनमें जैन साधु, मुनि, भट्टारक, पुजारी आदि निवास करते थे। कर्नाटक में ऐसा अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। रत्नगिरि में भी शांतिनाथ जिनालय के पास एक प्राचीन मठ स्थित है। रत्नगिरि मदकसीरा कस्बे से 25 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र रहा है। यहां स्थित मठ में समय–समय पर आवश्यकतानुसार सुधार होते रहे हैं। इस जैन मठ में एक अर्धमुख मंडप है, जिसके ऊपर छोटे–छोटे गोपुर द्वार बने हुये हैं। इनमें जैन प्रतिमाएं विराजमान हैं। द्वारपालों के रूप में मकर आकृतियों के साथ–साथ स्त्रियों की आकृतियां भी बनी हुई हैं। दरवाजे की चौखट के ललाट बिंब पर जैन मुनियों की आकृतियां हैं। अर्धमुख मंडप के खंभों पर नृत्य करती देवियों की आकृतियां बनी हैं। मठ के अंदर तीनों कक्षों पर जैन मुनियों की आकृतियां भी बनी हैं और ये कक्ष चारों ओर से ढके हैं। बीच का भाग खुला है। पैरापट दिवार पर सभी दिशाओं में छोटे–छोटे गोपुरों का निर्माण किया गया है, जिनमें तीर्थंकर व उनके शासन देवी–देवताओं की प्रतिमायें परिकर में दिखायी पड़तीं हैं। बराण्डा के ऊपर यत्र–तत्र बंदरों की आकृतियां बनी हैं। अपनी उपरोक्त विशिष्टताओं के कारण यह मठ अद्वितीय है।

8 तदपत्री – यह अनंतपुर शहर से 54 कि.मी.की दूरी पर स्थित है और सड़क व रेल मार्ग से जुड़ा है। यहां विजयनगर काल के अनेक मंदिर हैं।

उपलब्ध प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि 12वीं शती में यह जैनियों का प्रसिद्ध केन्द्र रहा था। यहां स्थित भगवान चन्द्रनाथ व पार्श्वनाथ जिनालयों के लिये यहां के प्रमुख उदयादित्य ने माघचन्द्र नामक पुजारी को जिनालय की व्यवस्था व पूजा हेतु भूमि दान में दी थी। माघचन्द्र मूलसंघ, देसीगण, कुन्दकुन्द पुस्तक गच्छ के थे। उनके गुरू भानुकीर्ति थे। पार्श्वनाथ मंदिर अब अस्तित्व में नहीं है।

9 रायदुर्ग – इस नाम से यह स्पष्ट होता है कि यहां राजा का किला था। वर्तमान में यह जिले का तालुका है व अनंतपुर जिला मुख्यालय से 95 कि.मी. की दूरी पर है। यहां किले के भग्नावशेष, हाथियों के आवास व मंदिरों के भग्नावशेष बड़ी मात्रा में किले के अंदर बिखरे पड़े हैं। पहाड़ी के मध्य भाग में चार गुफायें हैं, जिनमें पत्थर के छोटे–छोटे दरवाजे लगे हैं, और सिद्ध प्रतिमायें विराजमान हैं। ये जैन मुनियों के ध्यान केन्द्र थे, विशेषकर जैन धर्म से संबंधित यापनीय समुदाय के, जैसा कि दीवाल पर स्थित शिलालेख में मूलसंघ के चन्द्रभूति, चन्द्रेन्द्र व बडैया तथा यापानीय संघ के वमन्ना के नाम उत्कीर्ण हैं। एक शिलापट्ट पर विद्यालय भी उकेरा गया है। एक शिला पर तीन शिष्य व एक गुरू की आकृति बनी है, ऐसा तीन स्थानों पर अलग–अलग देखने को मिलता है। यह इस बात का संकेत है कि यहां स्थित विश्वविद्यालय में तीन पृथक–पृथक शिक्षण विभाग थे।

कुछ चट्टानों पर तीर्थंकर प्रतिमाओं के नीचे आचार्यो व शिष्यों की आकृतियां पंक्तिबद्ध बनी हुई हैं। एक पंक्ति में एक गुरू के साथ एक शिष्य ही है। एक अन्य जगह 6 शिष्यों के साथ दो गुरुओं की आकृतियां बनी हुई हैं।. कुछ शिष्यों में महिला शिष्य भी हैं। यापनीय समुदाय में स्त्रियों को प्रवेश देकर उन्हें जैन दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। आचार्यो/गुरुओं के सम्मुख पवित्र ग्रन्थ रखने के लिये ग्रन्थ–स्टैण्ड बने हैं। किले के मध्य में एक प्राचीन जिनालय स्थित है, किन्तु वर्तमान में इसमें कोई तीर्थंकर प्रतिमा वेदिका पर विराजमान नहीं है। कायोत्सर्ग मुद्रा में एक सुन्दर मूर्ति तालुका कार्यालय की चहार दीवारी के अंदर रखी है। कभी यह मूर्ति किले के अंदर के मंदिर में विराजमान थी।

(प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन मध्य प्रदेश उच्च शिक्षा सेवा के सदस्य रहे हैं। जैन पुरातत्व और इतिहास के वह जिज्ञासु विद्वान हैं। आन्ध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले के जैन स्मारकों के बारे में उन्होंने जो परिचय दिया है वह रुचिकर है। – सम्पादक)

शिव मंदिर की गली, नूतन विहार, टीकमगढ़–472001

मुनि राम सिंह की दृष्टि में शुद्धात्म–शिव और शिव पूजा की अहिंसक सामग्री

– डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

जैन धर्म जन धर्म है। भगवान महावीर की परम्परा के आचार्यो ने जनभाषा में ही जैन साहित्य को लिपिबद्ध किया। भ0 महावीर की दिगम्बर जैन परम्परा मूल संघ के नाम से प्रसिद्ध है। मूल अर्थात् आद्य संघ।

वर्तमान में आचार्य कुन्दकुन्द की आम्नाय और परम्परा मूल संघ के नाम से प्रसिद्ध है। इस परम्परा के साधु मूलगुणों का निरतिचार पालन करते हैं। मूल संघ को शुद्धाम्नाय भी कहा जाता है। इसमें परमार्थ स्वरूप वीतरागी देव–शास्त्र–गुरू को आराध्य माना जाता है। इस परम्परा के अनुयायी शुद्ध आचरण के साथ न्याय–नीति–पूर्ण जीवन, शुद्ध भोजन–पान और न्यायपूर्ण अहिंसक व्यवसाय अपनाते हैं, तथा शुद्ध नय की विषयभूत शुद्धात्मानुभूति और शुद्ध परिणति को मोक्ष मार्ग मानते हैं।

इसी परम्परा में नौवी शती में मुनि रामसिंह हुए। उन्होंने अपभ्रंश भाषा में **दोहापाहुड़** के नाम से 220 पद्यों की रचना की। इस कृति में उन्होंने आत्मा, आत्मानुभव और आत्मलीनतारूप शिवत्व की प्राप्ति का मार्ग बताया है। प्रस्तुत आलेख में मुनिश्री की दृष्टि में आत्म–शिव का स्वरूप, निर्दोष आराध्य देव, पत्ती–फलादि रहित पूजन सामग्री आदि को दर्शाया गया है।

आत्मा – शुद्धात्मा रूप शिव का स्वरूप

आत्मा एक चैतन्य भाव है। हे जीव! तुम एक चेतन भाव हो। पुण्य–पाप, धर्म–अधर्म, आकाश–काल और शरीर–रूप नहीं हो (30)। हे जीव! ज्ञानमय आत्मा के भावों से भिन्न अन्य सभी भाव पर–भाव हैं। पर–भाव छोड़ कर अपने शुद्ध स्वभाव का ध्यान करो (38)। राग–रंग से रहित जो निज स्वभाव की भावना भाता है एवं जो सन्त निरंजन है वही शिव है तथा उसी में अनुराग करना चाहिये (39)। तीनों लोकों में एक जिन देव हैं। तीन लोक जिनवर में झलकते हैं (40)। जिन देव कहते हैं कि जानो, जानो! यदि ज्ञान स्वभावी आत्मा को देह से भिन्न जान लिया, तो फिर अन्य को जानने से क्या? (41)। जिन देव कहते हैं कि वन्दन करो। वन्दन करो! जिसने अपनी देह में बसने वाले (भगवान आत्मा) को परमार्थ से जान लिया, तो फिर यहां कौन किसी की वन्दना करे? (42)।

मन परमात्मा से मिल गया है और परमात्मा मन से मिल गया है। दोनों समरस भाव को प्राप्त हो रहे हैं। इसलिये मैं पूजा किसकी करूं? अर्थात् पूजा सामग्री किस में समारोपित कर चढ़ाऊं? (50)। क्या देव ही बाहर चला गया है जो उसकी आराधना की जाये? जो शिव सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, उसका विस्मरण कैसे करूं? (51)। देहरूपी देवालय में जो शक्तियों सहित देव बसता है, हे जोगी! वह शक्तिमान शिव कौन है? उसकी खोज कर। (54)। जो नया–पुराना नहीं होता और न जिसका जन्म–मरण होता तथा जो सब से परे कोई अनन्तज्ञानमय त्रिभुवन का स्वामी है, वह निर्भ्रान्ति शिवदेव है। (55)। यदि हमने एक जिन देव को जान लिया तो अनन्त देवों को जान लिया। मोह (मिथ्यात्व) में मत चल। दर्शन मोह से मोहित जीव जिनदेव के पास नहीं आते। (59)। दर्शन, ज्ञानमय निरंजन परमदेव आत्मा से अनन्य है, अभिन्न हैं, वह अन्य नहीं हैं। हे मूढ़! ऐसा जान कि आत्मा के स्वभाव में सच्चा मोक्ष मार्ग है। (80)। जो संवर–निर्जरा पूर्वक प्रति दिन जिनवर का ध्यान करता है वही परमात्मा होता है। (94)

जिनेन्द्र देव पूज्य : क्षुद्र देव अपूज्य

हे जीव! जिनवर (जिनेन्द्र देव) में मन लगाकर विषय कषायों का त्याग कर। अब दुःखों को तिलांजली देकर सिद्ध पुरी में प्रवेश करो। (135)। हे जिनवर! जब तक देह स्थित आपको नहीं जान लिया है तब तक सदैव आपको नमस्कार है। यदि इस शरीर में स्थित आपको पहचान लिया है, तो फिर किसके द्वारा किसका नमन किया जाये! (142)।

हे मूर्ख जीव! तू विषय–कषाय को खोकर जिनेन्द्र देव का ध्यान कर। हे मूर्ख! उससे फिर कभी दुख नहीं देखना पड़ता है और अजर–अमर पद मिलता है। (198)। यदि मन क्रोध करके कलह करना चाहता है (तो उसे रोक कर) परम निरंजन देव का अभिषेक करना चाहिये। (141)। जो क्षुद्र (अवीतरागी) देव को पूजता है, वह न तो सकलीकरण (भूमि पात्र, जल, पूजा सामग्री, शरीरादिक की मंत्रों से शुद्धि) जानता है तथा न जल की निर्मलता का रहस्य पहचानता है और न आत्मा एवं पर–भावों का मेल समझता है। (185)। इस प्रकार, वीतरागता के श्रद्धानी निर्लेप जिन–प्रतिमा का दर्शन–पूजन करते हैं।

देह–देवालय में स्थित शिव को खोजो

साढ़े तीन हाथ का जो देवालय है उसके भीतर एक बाल, (रूप परिग्रह) का भी प्रवेश नहीं है, उसी में सन्त निरंजन बसता है। तुम निर्मल

होकर उसकी खोज करो। (95)। देह–देवालय में शिव निवास करता है किन्तु तुम उसे मंदिर में खोजते हो। मुझे मन ही मन हंसी आती है कि तुम सिद्ध भगवान से भीख मांगने के लिये भटक रहे हो। (187)। मूर्ख जन देवालयों में तो देव का दर्शन करते हैं, उनको खोजते हैं, किन्तु देह–देवालय में विराजमान शिव–सन्त को नहीं खोजते। (181)। हे जोगी! जिसके हृदय में जन्म–मरण से रहित एक देव निवास नहीं करता वह उत्तम गति कैसे प्राप्त कर सकता है? (165)।

जिन–शिव पूजन की अहिंसक सामग्री

मुनि राम सिंह ने जिनेन्द्र देव की पूजा की मूल परम्परानुसार अहिंसक सामग्री का प्रतिपादन दार्शनिक दृष्टि से किया है जो अनुकरणीय है। इस दृष्टि से निम्न गाथाएं मननीय हैं –

पत्तिय तोडहि तडतडाइ णाइं पइठ्ठा उटटु।
एवण जाणहि मोहिया को तोडइ को तुट्टु।।159।।
पत्तिय तोडि मजोइया फलहिं जि हत्थुमवाहि।
जसु कारणि तोडे हि तुहुं सो सिउ उत्थु चडाहि।।161।।
पत्तिय पाणिउ दब्भ तिल सव्वदूं जाणि सवण्णु।
जांपुणु मोक्खहं जाइवडुतं कारणु कुइ अण्णु।।160।।

अर्थात्, तुम (पूजा हेतु) सहसा पत्तियों को ऐसे तड़–तड़ा कर तोड़ रहे हो मानो ऊंट ने ही प्रवेश किया हो। मोह के आधीन होकर तुम यह नहीं जानते कि कौन तोड़ता है और कौन टूटता है (159)। हे जोगी! पत्ते मत तोड़ो और फलों को भी हाथ मत लगाओ। जिस शिव भगवान को चढ़ाने के लिए तुम तोड़ते हो सो वह शिव तुम्हारे घट में विराजमान है, अतः यहीं चढ़ा दें। (161)। पत्ती, पानी (दूध), दाभ, तिल (हिंसाजन्य पूजन सामग्री) इन सब को अपने समान प्राणवान समझो। जो यदि तुम मुक्ति को प्राप्त करना चाहते हो तो उसका कारण (निश्चय रत्नत्रय) तो कोई अन्य है। (160)। तात्पर्य यह कि शिवत्व की प्राप्ति के लिए पूजन सामग्री शिव (प्राण) रहित होना चाहिये। शिव को तोड़कर आत्म–शिव की उपलब्धि त्रिकाल में सम्भव नहीं है। इसमें पंचामृत अभिषेक का निषेध भी हो गया।

भोजन–पान और सम्पर्क सिद्ध भक्तों से करें

समान आचार–विचार और श्रद्धान वालों के साथ सम्बन्ध रखना योग्य होता है, इस न्याय के अनुरूप मुनिश्री सिद्ध अर्थात् निर्दोष देव के श्रद्धानी के साथ सम्बन्ध रखने का उपदेश देते हैं –

अच्छउ भोयणु ताह धरि सिद्ध हरेप्पिणु जेत्थु।
ताह समउ जय कारियइंता मेलियइं संमत्तु।।216।।

अर्थात्, उस घर का भोजन बना रहे जहां सिद्ध का अपहरण न हो। अर्थात्, उसके घर में भोजन नहीं करना चाहिये जो आठ कर्मो से रहित निर्दोष देव को पूजता न हो। उसके साथ जयकार करने से सम्यकत्व भी छूट जाता है।

संक्षेप में, वीतरागी देव, निजशुद्धात्म–शिवदेव ही पूज्य हैं। रागी देव अपूज्य और सम्यकत्व विराधक हैं। पत्ती, फूल, फल, सभी एकेन्द्रिय जीव हैं, अतः सचित्त पूजा वर्जित है। इस प्रकार, 9वीं शताब्दी में प्रचलित पूज्य, पूजा–सामग्री सम्बन्धित अवधारणा प्रकट हुई, जो मूलाम्नाय की पुष्टि करती है। सुधी जन विचार करें। वीर शासन जयवन्त हो।

———————

(अपभ्रंश भाषा में रची गयी मुनि रामसिंह की कृति *दोहापाहुड* शुद्ध आम्नाय को निरूपित करती है और डॉ. बंसल ने इसी भाव का परिचय दिया है। डॉ. बंसल का यह लेख *धर्ममंगल* दिनांक 2–1–2015 में, *वीर* (अक्टूबर 2015) में तथा *अपभ्रंश भारती* के अंक 21 में भी प्रकाशित हुआ है और अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा उन्हें 'डॉ. हीरालाल जैन पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। कोष्ठक में जो अंक दिये गए हैं वे *दोहापाहुड* की पद संख्या को इंगित करते हैं। –सम्पादक)

बी–369, ओरियन्ट पेपर मिल कॉलोनी, अमलाई (जि. शहडोल)–484117

✧✧✧

मिले सुख–सावन

– श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'

विरोध व क्रोध बने अवरोध 'अबोध', सुशोध करो मन भावन।
अनीति कुरीति की भीति गिरे, शुचि प्रीति के गीत हों मीत! सुहावन।।

सुधर्म का मर्म रहो नित नर्म, व कर्म सदैव करो अति पावन।
विराम कुकाम पे हो हर याम, जपो प्रभु नाम मिले सुख–सावन।।

सनेह के मेह झरें उर–गेह में, शान्ति के भाव भरें मन भावन।
न हों दुख–शूल, खिले सुख–फूल, लगें अनुकूल 'अबोध' सुहावन।।

लिये सद्भाव मिले हर एक, विवेक रखे मन को अति पावन।
कलेश व द्वेश हो लेश नहीं, सुख–बेल बढ़े हर ओर लुभावन।।

चन्द्रा मण्डप, 370/27 हाता नूरबेग, सआदतगंज, लखनऊ–226003

✧✧✧

JAIN INSCRIPTIONS OF THE CHĀLUKYA

- Km. Pinal Jain

The Chālukya power had a modest beginning under Jayasiṁha and his son Raṇarāga. During the reign of Pulakeśin II one branch of this dynasty was founded in Vengi and became famous by the name of Eastern Chālukyas of Vengi. Its main branch is known as Chālukyas of Vātāpi or Badami, which remained in power till the middle of the 8th century AD and thereafter it was displaced by the Rāshṭrakūṭas. In tenth century AD one of the members of this dynasty restored it after dismissing Rāshṭrakūṭ power and came to be known as Western Chālukyas of Kalyani. First we will discuss here inscriptions of the Chālukyas of Badami.

The Chālukyas of Badami

During the reign of Raṇarāga, second ruler of this dynasty, his Saindraka feudatory named Durgashakti donated some land to the famous *Śaṁkha Jinālaya* of Puligere. The successor of Raṇarāga was Pulakeśin I. One of his epigraphs commences with reverence to Arhat Mahāvīra. It registers that his feudatory Sāmiyāra of the Rundranila–Saindraka family (governor of Kuhundi district) built a Jain temple at the city of Alaktakanagara. After his request, king Śrī-Satyāśrya Pulakeśin I 'having known that the life of those that are born is transient like the lightening and the evening rainbow and having impressed on his courtiers that the acquisition of religion and wealth is esteemed and the only true reward for wise people', permitted Sāmiyāra to grant the villages named Ruvika, Samarivada, Lattivada and Pellidaka together with their fields to the temple which he built on the occasion of an eclipse of the moon. Here the acceptance of the transience of life and hence significance of religion and then permission of making grants to his feudatory shows his catholic outlook which enabled Jainism to obtain patronage in courts of his feudatories (*sāmantas*).

An inscription of Kīrtivarman I engraved on a stone tablet at the village of Adur records the grant of a field for the *dānaśālā* (hall for the distribution of charity) and other purposes, to the Jain temple which had been built by one of the *gamundas* or rich peasants. It also mentions that during the reign of Kīrtivarman, a

certain king Sind was governing the city of Pandipura, Donagamunda and Elagamunda, who with the permission of king Madhavatti, gave to the temple of Jinendra, for the purpose of providing the oblation, unbroken rice, perfumes, flowers etc., eight *mattals* of rice land. It is not dated but the style of characters leaves no doubt that it belonged to Chālukya king Kīrtivarman I.

Kirtivarman I was succeeded by his brother Mangaleśa. An epigraph of his reign registers donation of land to a Jain monastery by the Saindraka chief Raviśakti or Kannaśakti. It is undated but refers to Mangalarāja, who is no other than Mangaleśa of the Badami branch. Aihole inscription of Pulakeśin II, commences with an invocation to Lord Jinendra and mentions that with the generous support of his patron Pulakeśin II, Ravikīrti (writer of this inscription) founded a Jain shrine.

An inscription dated AD 686 of the reign of Vinayāditya records a grant to an Āchārya of *Mūlasaṁgha anvaya* and Devagaṇa sect. Another part of the same stone tablet dated in 34th year of Vijayāditya mentions that he donated the village of Kardama for the benefit of Śaṅkha Jinendra at the city of Pulikara, the present Lakṣmeśvara. Another inscription dated AD 734 of the time of Vikramāditya II, though begins with the veneration of Vishṇu, registers that king Vikramāditya Satyāśraya had embellished the Śaṅkhatīrtha-Vasati of the city of Pulikara and had repaired the white *Jinālàya (dhavala Jinālaya)* at the request of the merchant Bāhubali and also donated a field for the purpose of increasing the worship of Jina. The stone inscription dated AD 751-52 of Kīrtivarman II discovered at the village Annigeri in Navalgunda taluka of Dharwar district, records the construction of a *chaitya* or Jain temple by Kaliyamma, who was holding the office of the headman of Jebulageri, and the erection of a sculpture in front of it by a certain Kondisulara-kuppa whose other name was Kīrtivarma-Gosai.

The Eastern Chālukyas

A branch of the Chālukya dynasty was founded by Kubja Visṇuvardhana, junior brother of Pulakeśin II, in Andhra country during the first quarter of the 7th century, which came to be known

as the Eastern Chālukya dynasty. Jainism received patronage at the hands of this dynasty also from the very beginning. Ayyanaa Mahādevī, the queen of Kubja Vishṇuvardhana, donated some land situated in the Tonka Natavadi-*viṣaya* for the benefit of a Jain temple named Nadumbi *vasati* at Bijiavada (modern Bezwada). The donation was entrusted in the hands of the Jain teacher Kalibhadrāchārya of Kavururi *gaṇa* and *saṁgha anvāya.* The grant was renewed subsequently at the time of Vishṇuvardhana II, a later ruler of the family. Vijayāditya VI *alias* Amma II, a later ruler of this dynasty, in spite of his being of Brahmanical faith, promoted Jain religion. His three copper-plate records prove it. His Maliyapundi charter starts with an invocation to Lord Jinendra and mention that a Jain temple was erected in the south of the village Dharmapuri by Kaṭakarāja Durgarāja. The title Kaṭakarāja connotes that Durgarāja was 'superintendent of the royal camps'. The temple was named Kaṭakabharna *Jinālaya* evidently on the name of this official and at his request the king made a gift of the village Maliyapundi for the cost of repairs of breaks and cracks, offerings, worship etc., of the temple which was in charge of the teacher Śrī Mandiradeva of Yāpanīya *saṁgha,* Koti-Madaya or Maduva *gaṇa* and Nandi *gachchha.*

The Kalachumbarru grant of the king registers the grant of the same village to a Jain teacher named Arhananndin, belonging to Valanari *gaṇa* and Addakali *gachchha* for the purpose of providing for repairs to the charitable dining hall of a Jain temple called *Sarvalokāśraya-Jinabhavana.* The grant was evidently made by Amma II himself, but it was caused to be given by a certain lady named Chamekambā, who belonged to the Pattavardhika lineage and was a pupil of Arhanandin. She seems to be clearly marked as a courtesan in the inscription. It would appear, therefore, that she was the favourite mistress of the king. It is interesting to note that the temple appears to have derived its name after one of the predecessors of Amma II, either Chālukya Bhīma II or AmmaI, who bore the title 'Sarvalokāśraya' and during whose regime the temple possibly came into existence.

The Masulipatam plate of the present king though registers a grant to a Jain temple, opens with reverence to Vishnu. However,

it presents a deeply coloured picture of the Jain faith. It introduces us to a distinguished family of feudatory chiefs who professed the Jain religion and who flourished during the reign of Chālukya Bhīma II and his son Ammarāja II. Naravāhana I of the family called *Trinayana-kula,* was an officer under the Eastern Chālukya kings. He, like the preceptor of the gods, was the master of the science of polity. His son Melaparāja and the latter's wife Mendambā were followers of Jain religion. Their sons Bhīma or Rāja-Bhīma and Naravāhana II, ardently followed the path of Jain *dharma.* They had a preceptor named Jayasena who was proficient in Jain philosophy. At the instance of this reputed teacher Bhīma and Naravāhana II erected two Jain temples at Vijayāvaṭikā and for the benefit of these temples king Amma II granted the village Pedda-Galidiparru having converted it into a *devabhoga.*

An inscription engraved on the wall of Durgapancha cave at Ramatirtha in the Viziagapatam district is highly interesting; it furnishes valuable information both about the place itself and a later king of the Eastern Chālukya lineage. The epigraph belongs to the reign of Vimalāditya (AD 1011-22) and states that his religious teacher Trikālayogi Siddhāntadeva of the Desi *gaṇa* paid homage at Ramakonda with great devotion. This shows, in the first instance, that the king had become a convert to the Jain faith and had adopted the Jain teacher as his spiritual guide. Secondly, the record shows the significance of Ramatirtha as a Jain pilgrimage.

The Chālukyas of Kalyāṇī

The Chālukyas of Kalyāṇī who succeeded the Rāshṭrakūṭas, were also patrons of Jainism. A large number of inscriptions ascribed to this period bear testimony to their patronage and their contribution to the glorious career of Jainism during their hegemony. Tailap II had a strong attachment to Jainism and patronized Ranna Kaviratna, the author of **Ajita Purāṇa,** who received the title of *Kavichakravartin* from the king. However, it is alleged that the Chālukya rulers beginning with Tailapa II, persecuted the Jains. But the reason behind it may be political rather than religious. The successor of Ṭailapa II was Irive Bedaṁga Satyāśraya. He received spiritual guidance from a Jain teacher named Vimala Chandra

Paṇḍitadeva of the *Draviḍasaṁgha* and *Kundakundānvaya* and he constructed a monument (*niṣidhi*) in honor of his *guru*.

Jayasiṁha III, grandson of Tailapa II, is said to have been converted to the Vīraśaivism under the influence of his wife Suggaladevī. Hence he is supposed to have persecuted the Jains. The **Bāsava Purāṇa** states that Devara-Dasimayya, the guru of Suggaladevī, who was wife of Desinga, despoiled the *śrāvakās* and induced Desinga to adopt the Śaiva religion. According to Fleet, this Desinga was Chālukya monarch Jayasiṁha III. However, this king is also supposed to have constructed a *basadi* at Balipura. He is also ascribed to be the patron of many Jain scholars such as Vādirāja, Dayapal, Pushpasena Siddhāntadeva, etc. One of the titles of Vādirāja was Jagadekamallavādī, which was given to him by king Jayasimha III Jagadekamalla. His successor was Someśvara I who had titles of Ahavamalla and Trailokyamalla. One of his inscriptions mentions that his queen Ketaladevī had Chankirāja as her feudatory or employee, 'who was a very foundation pillar of the precepts of the Arhat, who was a very king among Jain ascetics and who is a bee on water-lilies which are the feet of Mahāsena, the chief of saints'. He had caused to be built Tribhuvanatilaka *Jinālaya* at Ponavada. At the request of Ketaladevī king Someśvara I made endowments to this temple in order to provide food for the saints at the *Chaityālaya*. Another inscription of his successor Someśvara II commences with reverence to Jinendra and records a grant to the temple of Lord Śāntinātha in the hands of Kulachandradeva of *Mūlasaṁgha* and *Kapurgaṇa*. We do not have any proof of the observation of Jain worship by this dynasty but only of patronage either by the kings themselves or by their feudatories. Among their feudatories the Kākātiyas and the Polavasa family of chiefs belonged to the same stock of generals and were set up by Chālukyas as *Mahāmaṇḍaleśvara* side by side. The Govindapuram epigraph and theTelugu chronicle **Siddheśvara-Charita** show that both the Kākātiya and the Polavasa families had their leanings towards Jainism. The former one mentions Mādhava Chakravartin as the founder of the Polavasa family who acquired his military strength consisting of eight thousand elephants, ten crores of horses and innumerable soldiers by the grace of Yakṣeśvarī at the command of Jina.

In the **Siddheśvara-Charita,** Mādhavavarman is said to be the founder of the Kākātiya family who acquired an army comprising thousands of elephants and lakhs of horses and foot soldiers by the grace of the Goddess Padmākshī. This goddess is beyond all doubt a Jain deity. Such a tradition indicates their inclination towards Jainism which is supported by their epigraphs also. However, later on the policy of the Kākātiyas changed and they patronized Śaivism and the persecution of the Jains was also encouraged.

The above discussed inscriptions are testimonials of the patronage provided to Jainism by different branches of the Chālukya dynasty.

Sources - Journals :

1 **Annual Report on Epigraphy** (Archaeological Department, Southern Circle, Madras) 1916-17
2 **Epigraphia Carnatica,** Vol. VI, VII.
3 **Epigraphia Indica,** Vol. VI, VII, IX, XXI, XXIV.
4 **Indian Antiquary,** Vol. VII, XI, XIX.
5 **Journal of Andhra Historical Research Society,** XXXVI,1.
6 **जैन शिलालेख संग्रह, भाग – 2,** सं. पं. हीरालाल जैन व विजयमूर्ति
7 **जैन शिलालेख संग्रह, भाग – 3,** सं. पं. हीरालाल जैन व विजयमूर्ति

Sources - Books :

1 Ayyangar, M.S. and Rao, B. Sheshagiri : **Studies in South Indian Jainism,** parts 1 & 2; **Andhra Karnataka Jainism.**
2 Desai, P.B. : **Jainism in South India and Some Jaina Epigraphs,** Sholapur, 1957.
3 Jain, K.C. : **History of Jainism : Historical Survey and Spread of Jainism,** Vol. 2, New Delhi, 2010.
4 Kalghatgi, T.G. (ed.) : **Jainism and Karnataka Culture,** 1977.
5 Sharma. S. R., : **Jainism and Karnataka Culture,** 1940.

(चालुक्यों के इतिहास के सम्बन्ध में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ग्रन्थ *भारतीय इतिहास : एक दृष्टि* का अध्याय 8 "दक्षिण भारत (2)" ध्यातव्य है। इस लेख की लेखिका कु. पीनल जैन दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में एम.फिल. की छात्रा हैं। –सम्पादक)

बी–69, गली 3, पर्वतीय आंचल, संत नगर, बुरारी, दिल्ली–110084

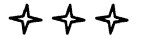

एक निष्ठावान श्रावक का भाव–चिन्तन

– श्री मगन लाल जैन

(श्री मगन लाल जैन अष्टाशीति वय ज्येष्ठ निष्ठावान सुश्रावक हैं। उन्होंने व्यक्ति और समाज के चरित्र और व्यवहार के सम्बन्ध में अपने चिन्तन को अभिव्यक्त किया है तथा कुछ अन्य मनीषियों के भावों को भी संकलित किया है। यह चिन्तन व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी होगा। –सम्पादक)

असली ज़िन्दगी

दुनिया में कोई चीज़ अपने आप के लिए नहीं बनी है। दरिया खुद अपना पानी नहीं पीता। पेड़ खुद अपने फल नहीं खाता। सूरज खुद अपने लिए प्रकाश नहीं देता। फूल अपनी खुशबू अपने लिए नहीं बिखेरते हैं। मालूम क्यों? क्योंकि दूसरे के लिए जीना और बेसहारे का सहारा बनना ही असली ज़िन्दगी है।

फुरसत नहीं है इंसान को मंदिर जाने की और मरते समय ही ख्वाहिश रखता है सीधे स्वर्ग जाने की।

भोग नहीं भाव

मां–बाप ने हमें जन्म दिया, मतलब तन दिया और परमात्मा ने हमें मन दिया । अगर व्यक्ति तन से मां–बाप की सेवा और मन से भगवान की पूजा करे तो जिन्दगी को स्वर्ग में तब्दील कर ले, क्योंकि भगवान तुम्हारे भोग का नहीं भाव का भूखा है।

गौतमबुद्ध ने भी कहा है कि हजार योद्धाओं पर विजय पाना आसान है, लेकिन जो अपने ऊपर विजय पाता है वही सच्चा विजयी है।

महावीर का वचन है कि जो धर्मात्मा है अर्थात् जिसके मन में सदा धर्म रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

वास्तविकता

पैसे वालों का आधा पैसा तो यह बताने में चला जाता है कि वे भी पैसे वाले हैं।

इस दुनिया में कोई किसी का हमदर्द नहीं होता। लाश को शमशान में रखकर अपने ही लोग पूछते हैं कि कितना वक्त लगेगा।

बच्चों को एक पिता चाहिए न कि राष्ट्रपिता और पत्नी को एक पति चाहिए न कि राष्ट्रपति।

जिस वक्त मौत आती है, उस वक्त तख्त पर दम तोड़ने वाले बादशाह और तख्त पर सांस तोडने वाले भिखारी में कोई फर्क नहीं होता।

अध्यात्म का प्रारम्भ धर्म से होता है, परन्तु धर्म का प्रारंभ घर से होता है।

धनी वह नहीं जिसके पास लाखों–करोड़ों रुपये हों वरन् वह है जिसे हर हाल में जीना आता है।

सुखी रहना चाहते हो तो अपनी नजर किसी अमीर की हवेली पर नहीं वरन् गरीब की झोपड़ी पर रखिए।

हाय हैलो छोड़िये। जय जिनेन्द्र बोलिये।

परमात्मा पूजा का नहीं, प्रेम का भूखा है।

तुम जैसा कार्य करोगे, तुम्हें वैसा ही फल मिलेगा।

समस्याओं से घबराओ मत, सामना करो, समस्यायें स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

घर का आंगन चाहे छोटा हो मगर चिंतन का दायरा विशाल होना चाहिए।

घर के दरवाजे बन्द भले ही हों मगर दिल के दरवाजे सब के लिए खुले रहें।

हर दिन नया, हर रात निराली है, दिल में अगर ममत्व है तो हर रोज दिवाली है।

पानी से पैर धुल सकता है पर वैर नहीं धुल सकता।

न मस्जिद न मंदिर

ये पहाड़ ये शाखाएं भी परेशान हो जायें,
अगर परिंदे भी हिन्दू और मुसलमान हो जायें।
सूखे मेवे भी यह देखकर हैरान हो गए,
न जाने कब नारियल हिन्दु हो गया
और खजूर मुसलमान हो गया।
न मस्जिद को जानते हैं, न मंदिर को जानते हैं,
भूखे पेट होते हैं, वह सिर्फ निवालों को जानते हैं।

भक्ति

भक्ति जब घर में प्रवेश करती है, तो घर मंदिर बन जाता है।

भक्ति जब भोजन में प्रवेश करती है, तो भोजन प्रसाद बन जाता है।

भक्ति जब भूख में प्रवेश करती है, तो भूख व्रत बन जाती है।

भक्ति जब सफर में प्रवेश करती है, तो सफर तीर्थयात्रा बन जाता है।

भक्ति जब संगीत में प्रवेश करती है, तो संगीत कीर्तन बन जाता है।

और

भक्ति जब मानव में प्रवेश करती है, तो मानव इंसान बन जाता है।

प्रायोजित तीर्थ

पिछले डेढ़ दशक में बहुत से नये तीर्थ बने हैं। इन नए तीर्थों में धर्म की प्रभावना कम बल्कि व्यक्तिनिष्ठ ख्यातिलाभ की तृष्णा की भावना ही अधिक झलकती है। विडम्बना यह है कि नए तीर्थो का निर्माण अपरिग्रही ज्ञान–ध्यान–तप में लीन रहने वाले उन योगियों द्वारा हो रहा है जिन्होंने आत्म–कल्याण की चाह में समस्त परिग्रह को छोड़ कर तथा निर्ग्रन्थ वेश धारण कर वीतराग मार्ग अपनाया था। इन प्रस्तावित तीर्थो की स्थापना के पीछे प्रदर्शन और प्रतिष्ठा की चाह स्पष्ट रूप से लक्षित होती है।

पंच–कल्याणक जैसे आयोजनों में धर्म–प्रभावना तो न के बराबर होती है जब कि इनमें आय के स्रोत व नाम–लाभ का गुणा–भाग अधिक होता है। कमीशन आज की सबसे बड़ी जरूरत हो गयी है, सो इस क्षेत्र में भी इसकी हिस्सेदारी अवश्य ही तय होती होगी। कुल मिलाकर प्रतीत होता है कि जैसे कुछ व्यक्तियों ने कोई इण्डस्ट्री खोल रखी हो। यह बात अलग है कि इन प्रायोजित तीर्थो और पंच कल्याणकों से न तो समाज का भला होता है और न ही जिन शासन की प्रभावना।

त्यागी वर्ग का आचरण

त्यागी को किसी संस्थावाद में नहीं पड़ना चाहिए। यह कार्य गृहस्थ का है। आज का व्रती वर्ग चाहे मुनि हो, चाहे श्रावक हो, स्वच्छन्द विचरना चाहता है, यह उचित नहीं है। धीरे–धीरे शिथिलाचार फैलता जा रहा है। किसी मुनि को दक्षिण और उत्तर का विकल्प सता रहा है तो किसी को बीसपंथ और तेरहपंथ का। कोई मुनि प्रक्षाल के पक्ष में व्यस्त है तो कोई जनेऊ पहनाने और कटी में धागा बांधने के लिए व्यग्र है। कोई ग्रन्थमालाओं के संचालक बने हुए हैं तो कोई ग्रन्थ छपवाने की चिन्ता में गृहस्थों से चंदा मांगते फिरते हैं। किन्हीं के साथ मोटरें चलती हैं तो किन्हीं के आश्रय स्थल पर कीमती चटाइंयों और आसन के पाटों तथा छोलदारियों की बहुलता होती है। कितने ही विद्वान भी आंख मींच कर चुप बैठ जाते हैं या हां में हां मिलाकर गुरु भक्ति का प्रमाण–पत्र प्राप्त करने में लगे रहते हैं। आधुनिक शिक्षा–प्राप्त और विचारधारा से प्रभावित युवा वर्ग इस प्रकार की साधुचर्या से संत्रास और विरक्ति का अनुभव करता है। समाज के विद्वत् वर्ग को इस सम्बन्ध में साधुचर्या को सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिएं।

4/153, विशेष खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ–226010

मैंने अमृत पी लिया है

— श्री अमर नाथ

कई गुना कर ज़िन्दगी को, कल्पों सा क्षण जी लिया है।
मैंने जीवन जी लिया है, मैंने अमृत पी लिया है।।
मौन हुई सब इन्द्रियां थीं, ज्ञान की बंद परिधियां थीं।
घुल गया, तन मन मेरा सब, फूट रहीं रस–रश्मियां थीं।।
वह उन्मादित क्षण अलौकिक, बहु–जन्मों सा, जी लिया है।
मैंने जीवन जी लिया है, मैंने अमृत पी लिया है।।
लपलपाती एक किरन सी, भेद दिल का तमस, तपन भी।
पार दिल के हो गई, तभी, जल गई आकुलता मन की।।
झरते उस अमृत कलश से, आंजुर भर, रस पी लिया है।
मैंने जीवन जी लिया है, मैंने अमृत पी लिया है।।
भंगुर यह काया लगी जब, दुनिया यह माया लगी तब।
महा–विराटी उस रूप की उस, सृष्टि–सकल छाया लगी तब।।
बदले अणु–अणु नित मुखौटे, उसकी जादुई विद्या है।
मैंने जीवन जी लिया है, छक कर अमृत पी लिया है।।
अपनी बांहों में भरा जब, हाथों को सिर पर धरा जब।
पौंछा जब प्रस्वेद मुख का, दर्द आंखों में उभरा तब।।
बनकर उस क्षण मैं जटायूं, राम दृग–जल पी लिया है।
मैंने जीवन जी लिया है, जी भर अमृत पी लिया है।।
कई गुना कर जिन्दगी को, मैंने जीवन जी लिया है।
मैंने अमृत पी लिया है।।

401–ए, उदयन–1, बंगला बाजार, लखनऊ–226002

अभिनन्दन समारोह – 2015

अहिंसा इन्टरनेशनल की स्थापना 26 जनवरी, 1973 ई., को दिल्ली में तत्कालीन प्रतिष्ठित जैन बुद्धिजीवियों द्वारा की गई थी। (स्व.) श्री सतीश कुमार जैन ने महासचिव के रूप में इसको व्यवस्थित करने में विशेष योगदान किया था। श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज का मार्गदर्शन इस संस्था को प्रारंभ से ही प्राप्त रहा। वर्तमान में इसके अध्यक्ष श्री विजय कुमार जैन हैं, महासचिव श्री ए.के.जैन (आई.आर.एस. रिटा.) हैं, कोषाध्यक्ष श्री एम.एल.जैन हैं, संगठन सचिव श्री सुधीर कुमार जैन हैं, और सचिव परियोजना श्री प्रताप जैन हैं।

1986 में विश्व शांति, अहिंसा, शाकाहार, जैन इतिहास, धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत प्रतिभावान विद्वानों का इस दिशा में उनके द्वारा किये गये कार्य का समादर करने और उनको साहित्य निर्माण के लिए प्रोत्साहन देने हेतु **अहिंसा इन्टरनेशनल** द्वारा **'डिप्टीमल जैन स्मृति पुरस्कार'** की स्थापना की गई। इस पुरस्कार के लिए सुपात्र का चयन करने हेतु सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल संघवी की अध्यक्षता में एक निर्णायक मण्डल गठित किया गया। उक्त निर्णायक मण्डल ने एकमत से लखनऊ के **डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** को भारतीय इतिहास एवं संस्कृति तथा जैन विद्या के क्षेत्र में उनकी समर्पित दीर्घकालीन महती सेवाओं और विपुल कृतियों के लिए उक्त पुरस्कार प्रदान कर अपने को गौरवान्वित करने का सुखद निर्णय लिया। दिनांक 14 दिसम्बर, 1986, को फिक्की सभागार में इस हेतु एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया।

पुनः, 20 अप्रैल, 2003, को चिन्माया सभागार में आयोजित सम्मान समारोह में डॉ. साहब के अनुज **श्री अजित प्रसाद जैन** को जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए **"अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार 2002"** से सम्मानित किया गया।

उसी परम्परा में डॉ. साहब के पौत्र **श्री नलिन कान्त जैन** को जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए **"अहिंसा इन्टरनेशनल विजयकुमार, प्रबोधकुमार, सुबोधकुमार जैन पत्रकारिता पुरस्कार"** से दिनांक 6 दिसम्बर 2015 को **अहिंसा इन्टरनेशनल** के 42वें स्थापना दिवस पर नई दिल्ली में कुन्दकुन्द भारती के खारवेल हॉल में सम्मानित किया गया।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि "अहिंसा इन्टरनेशनल डिप्टीमल आदीश्वरलाल जैन साहित्य पुरस्कार" और "अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचंद जैन पत्रकारिता पुरस्कार" अब अवस्थिति में नहीं हैं। 6 दिसम्बर 2015 को जो पुरस्कार–सम्मान प्रदान किए गये वे निम्नवत् हैं :–

1. भोपाल के **श्री सुरेश जैन** (आई.ए.एस. रिटा.) को **अहिंसा इन्टरनेशनल दर्शनलाल–चक्रेशवती जैन लाईफ टाइम एचीवमेंट पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। श्री सुरेश जैन का जन्म 17 अक्टूबर 1946 को नैनागिरि में हुआ था। आई.ए.एस. अधिकारी के रूप में उनकी छवि एक सत्यनिष्ठ कार्यकुशल प्रशासनिक अधिकारी की रही। नैनागिरि तीर्थ के उन्नयन का कार्य उनकी अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विमला जी मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति के पद से सेवानिवृत्त हुईं। श्री सुरेश जैन के सम्पूर्ण व्यक्तित्व व कृतित्व के परिप्रेक्ष्य में उन्हें 'लाईफ टाइम एचीवमेंट पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार इसी वर्ष प्रारंभ किया गया है।

2. बीजापुर के **श्री डी.आर.शाह** को **अहिंसा इन्टरनेशनल हरिश्चंद्र, रमेशचंद्र, अतुल जैन, राहुल जैन धर्म प्रचार पुरस्कार** प्रदान किया गया।

3. जैन विद्या और प्राकृत साहित्य के प्रतिष्ठित विद्वान, मैसूर के **प्रो. शुभाचंद्र** को **अहिंसा इन्टरनेशनल अतरसैन शकुन्तला जयपाल जैन साहित्य पुरस्कार** प्रदान किया गया। शुभाचंद्र जी का जन्म मांडिया (कर्नाटक) में 18 सितम्बर 1946 को हुआ था और वह मैसूर विश्वविद्यालय में जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग के अध्यक्ष रहे थे। जैन मिलन लखनऊ द्वारा भी नवम्बर 2015 में उन्हें सम्मानित किया गया था।

4. **भगवान महावीर चेरिटेबुल हेल्थ सेंटर अहिंसा धाम, मधुविहार, दिल्ली** को **अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचंद संजय जैन रोगी सेवा चिकित्सा पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। इसके अध्यक्ष श्री विपिन जैन हैं।

5. अमलाई (जि. शहडोल, म.प्र.) के **डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल** को **अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल डालचंद जैन शाकाहार जीवदया पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। डॉ. बंसल का जन्म 10 जनवरी 1938 को चंदेरी में हुआ था। ओरियन्ट पेपर मिल्स, अमलाई, में कार्मिक प्रबन्धक के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद वह अहिंसा, शाकाहार व मांस–निर्यात–प्रतिबंध के प्रचारक के रूप में कार्य कर रहे हैं और दार्शनिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर शोधपरक एवं चिन्तनशील ग्रन्थों का प्रणयन कर रहे हैं।

6. महाराष्ट्र के कोल्हापुर जनपद के हुपरी गांव में जन्मे **श्री महावीर गाट (आण्णा)** को **अहिंसा इन्टरनेशनल जिनेन्द्रवर्णी स्मृति जैन धर्म प्रचार–प्रसार पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। उनका जन्म 15 अप्रैल 1957 को हुआ था। अपनी जिज्ञासु–वृत्ति, आत्म–विश्वास और दूर–दृष्टिकोण के कारण वे जैन समाज में 'धर्मसारथी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

7. **शोधादर्श** के सम्पादक **श्री नलिन कान्त जैन** को **अहिंसा इन्टरनेशनल विजयकुमार प्रबोधकुमार सुबोधकुमार जैन पत्रकारिता पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

8. इन्दौर के **श्री रमेश कासलीवाल** को जैन पत्रकारिता के दूसरे पुरस्कार **अहिंसा इन्टरनेशनल पारसदास अनिलकुमार जैन पत्रकारिता पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। श्री कासलीवाल **वीर निकलंक** मासिक पत्रिका का सम्पादन–प्रकाशन करते हैं।

9. **श्री अविनाश जैन,** स्वीटहोम के प्रबन्ध निदेशक, को **अहिंसा इन्टर–नेशनल उजागरमल सलेकचंद जैन कागजी रचनात्मक समाज–सेवा पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

10. दिल्ली के **चि. रोहन जैन** को **अहिंसा इन्टरनेशनल प्रेमचंद नवीन जैन मेधावी छात्र पुरस्कार** प्रदान किया गया।

'लाईफ टाईम एचीवमेंट पुरस्कार' की धनराशि रु. 31000/– है और 'मेधावी छात्र पुरस्कार' की राशि रु. 11000/– है, तथा शेष 8 पुरस्कारों की राशि रु. 21000/– है।

इस समारोह का **प्रत्यक्षदर्शी** होने का सुयोग मुझे भी प्राप्त हुआ। इतिहास, कला, साहित्य और संस्कृति सम्बन्धित पंथ–निरपेक्ष शोधपरक आलेखों के प्रकाशन के लिये ख्याति–प्राप्त पत्रिका **शोधादर्श** में सामाजिक समस्याओं के तर्कसम्मत समाधान, प्रबुद्ध पाठकों के अभिमत और रचनात्मक समालोचनाओं को भी निरंतर प्रकाशित करने वाले **सम्पादक, श्री नलिन कान्त जैन** को **पत्रकारिता पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। श्री नलिन कान्त जैन, बी.एस–सी.,एल–एल.बी., श्रद्धेय इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के पौत्र तथा डॉ. शशि कान्त जैन के सुपुत्र और मेरे पति हैं। उनका जन्म 5 अक्टूबर, 1957 ई., को हुआ था। पितामह की प्रेरणा और प्रोत्साहन से बचपन से ही उनमें सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यक्रमों के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। अपने व्यावसायिक और गार्हस्थिक दायित्वों का समुचित रूप से सम्पादन करते हुए वह सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए यथेष्ट समय निकाल लेते हैं।

परिवार में पितामह के समय से चली आ रही सांस्कृतिक–साहित्यिक परम्परा को यह सम्मान रेखांकित करता है। **अहिंसा इन्टरनेशनल** जैसी महत्वपूर्ण संस्था द्वारा इस परिवार के 3 सदस्यों – स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, स्व. श्री अजित प्रसाद जैन और अब श्री नलिन कान्त जैन को उनके कृतित्व के लिए सम्मानित किया जाना एक गौरव की बात है।

यहां मैं यह भी उल्लेख करना चाहूंगी कि जिस प्रकार पितामह को उनके विद्वत्तापूर्ण कृतित्व के लिए संस्था द्वारा स्वयं चयनित किया गया था, उसी प्रकार उनके पौत्र श्री नलिन कान्त को भी संस्था द्वारा स्वयं ही चयनित किया गया। संयोग से 5 अक्टूबर को उनके जन्मदिन पर महासचिव श्री ए.के. जैन ने फोन पर श्री नलिन कान्त को सूचित किया कि उन्हें जैन पत्रिकारिता पुरस्कार के लिए चयनित किया गया है तो एक सुखद आश्चर्य हुआ और जन्मदिवस पर यह शुभ संवाद परिवारजनों के लिए विशेष आह्लादकारी भी हुआ।

जैन समाज में शोधपरक पत्रिकाओं के अभाव को देखते हुए **कीर्तिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन** ने 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश,' के तत्वावधान में फरवरी 1986 में **शोधादर्श** पत्रिका का सूत्रपात किया था। इस पत्रिका का सम्पादन श्री नलिन कान्त जैन द्वारा किया जा रहा है। **शोधादर्श** पत्रिका देश की उच्चस्तरीय धार्मिक–सांस्कृतिक शोध–पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, और इसके सम्पादक का **अहिंसा इन्टरनेशनल** द्वारा सम्मान किया जाना इस पत्रिका के महत्व को रेखांकित करता है।

मुझे 6 दिसम्बर को सम्पन्न अभिनन्दन समारोह में श्री नलिन कान्त जैन की सहधर्मिणी के रूप में सम्मलित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। **इस समारोह के लिए यह विशेष गौरव की बात थी कि पूज्य मुनिवर विद्यानन्द जी महाराज अस्वस्थ होते हुए भी सम्मानार्थियों को अपना आशीर्वाद प्रदान करने के लिए समारोह में सम्मिलित हुए। हमारा पूज्य मुनिवर के लिए सादर अभिवन्दन निवेदित है।**

इस प्रसंग में हम दम्पति महासचिव श्री ए.के. जैन तथा संस्था के सभी पदाधिकारियों के प्रति तो आभारी हैं ही, श्री प्रताप जैन और श्री सुधीर कुमार जैन को विशेष आभार भी ज्ञापित करते हैं। श्री प्रताप जैन ने सर्वप्रथम सम्मान समारोह के आयोजन की सूचना दी थी और श्री सुधीर कुमार जैन ने समारोह के चित्र उपलब्ध कराये हैं।

✧✧✧

– श्रीमती मोहिनी जैन

सविनय स्मरण

जुलाई से दिसम्बर 2015 की छमाही में हमारे कुछ ऐसे मित्रों का वियोग हो गया है जिससे बौद्धिक क्षितिज पर एक शून्य–सा प्रतीत होता है। इन सभी से दीर्घकालीन सम्पर्क था और बौद्धिक संवाद करने का सुयोग प्राप्त होता था। यह जानते हुए भी कि आवागमन निश्चित है और किसी मित्र का साथ निरंतर स्थायी नहीं रह सकता, तो भी जब किसी मित्र का अवसान होता है तो एक विचित्र पीड़ा का बोध होता है। उनके साथ रहे सम्पर्क की स्मृति मन को आकुलित करती रहती है। इन सभी स्मृतिशेष मित्रों के प्रति अपनी विनय भावना को व्यक्त कर अवसाद का कुछ निरसन करने का प्रयास किया जा सकता है। उसी परिप्रेक्ष्य में कुछ शब्द मैं उनके समादर में लिख रहा हूं।

14 जुलाई को हमारे पड़ोसी मित्र, 90–वर्षीय **डॉ.. सुरेन्द्र कुमार (माथुर)** का निधन हो गया था। वह एक प्रतिष्ठित चिकित्सक थे परन्तु आजकल के व्यावसायिक मनोवृत्ति से उनका व्यवहार भिन्न था। एक मित्र के रूप में उनका चिकित्सकीय परामर्श मुझे यथावश्यक यथासमय निस्संकोच प्राप्त होता रहता था।

26 जुलाई को मेरठ में 95–वर्षीय **श्री शांति प्रकाश जैन** (आई.ए.एस. रिटा.) ने यह संसार छोड़ दिया। वह एक कर्तव्यपरायण और सत्यनिष्ठ प्रशासक रहे थे। 1974 में जब वह उत्तर प्रदेश शासन में उप–सचिव के पद पर कार्यरत थे, हमारा उनसे सम्पर्क हुआ था और तब से यह सम्पर्क निरंतर बना रहा। 1975 में तीर्थंकर महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष में आयोजित "भारतीय संस्कृति में जैन विचारधारा" पर 4–दिवसीय संगोष्ठी में उन्होंने विशेष रुचि ली। **शोधादर्श** और **Frown/संतर्जन** पत्रिकाओं के वे सहृदय पाठक थे तथा अपनी अभिशंसात्मक प्रतिक्रिया से अवगत कराते रहते थे। भारत विकास परिषद से भी वह जुड़े थे। पारिवारिक त्रासदियों के बावजूद उनका समता भाव स्थिर था।

24 अगस्त को जबलपुर में 90–वर्षीय **प्रो. एल.सी. जैन (लक्ष्मी चंद्र जैन)** का लम्बी अस्वस्थता के बाद शरीर शांत हो गया। इसकी सूचना हमें बहन श्रीमती सितारा जैन के माध्यम से प्राप्त हुई। उन्होंने गणित पर, विशेष रूप से जैन साहित्य में प्राप्त संदर्भो के आधार से, महत्वपूर्ण कार्य किया था जो अभी तक किसी अन्य विद्वान द्वारा सम्पादित नहीं किया जा सका है। मध्य प्रदेश राज्य शैक्षणिक सेवा के अंतर्गत वह छिन्दवाड़ा के राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य के पद से 1984 में सेवा

निवृत्त हुए थे। उसके बाद उनका सारा समय अध्ययन और लेखन में ही लगा। अपने विषय के अतिरिक्त उनकी अभिरुचि सामान्य जैन साहित्य के अध्ययन में भी थी और वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य के प्रति भी वह जिज्ञासु थे। **शोधादर्श** में समीक्षा के लिए उनकी कृतियां प्राप्त होती रहती थीं। **Frown/संतर्जन** के वे मनस्वी पाठक थे।

1 अक्टूबर को लखनऊ में 88–वर्षीय विद्वान मनीषी **डॉ. (श्रीमती) सरला शुक्ला** का देहावसान हो गया। वह लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से 1987 में सेवानिवृत्त हुईं थी। 1958 से ही हमारा उनसे सम्पर्क रहा और वे विविध साहित्यिक–सांस्कृतिक कार्यक्रमों में सहयोग देती रहीं। इतिहास–मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की जन्मशती के उपलक्ष में 21 जुलाई 2012 को आयोजित अभिनन्दन समारोह में उनका सार्वजनिक सम्मान व अभिनन्दन किया गया था। **शोधादर्श** की वह नियमित पाठक थीं।

19 नवम्बर को 94–वर्षीय **श्री राम कृष्ण त्रिवेदी** का लखनऊ में देहावसान हो गया। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य रहे थे और भारत के मुख्य निर्वाचन आयुक्त का पद भी उन्होंने सुशोभित किया था। तदुपरान्त वह गुजरात के राज्यपाल भी रहे थे जहां से उन्होंने 1990 में अवकाश ग्रहण किया था। अप्रैल 2004 में जब हमने भारतीयत्व और युक्तियुक्त चिन्तन के प्रखर संवाहक के रूप में अंग्रेजी में **Frown** तथा हिन्दी में **संतर्जन** पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया तो उन्होंने इन शब्दों के साथ हमारा मनोबल बढ़ाया - "I would only say that I appreciate your selfless effort to highlight matters of grave national interest requiring all right thinking people to speak out their minds in the larger interest of the country. I commend your solo endeavor and wish you well." त्रिवेदी जी अध्ययन–मननशील व्यक्ति थे। उन्होंने हमारी प्रकाशित दोनों पुस्तकों को आग्रहपूर्वक मंगाकर रुचिपूर्वक पढ़ा और शोधपरक विधा के लिए शुभशंसा की। विगत 3–4 वर्ष से वह अस्वस्थ चल रहे थे तथापि जब भी उनसे फोन पर संवाद होता था, वह वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपना स्पष्ट अभिमत देते थे और स्वतंत्र निष्पक्ष–चिन्तन–लेखन के लिए प्रोत्साहित करते थे। **शोधादर्श** के भी वह प्रशंसक रहे थे।

22 दिसम्बर को लखनऊ में ही 97–वर्षीय **श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा** चिरनिद्रा में विलीन हो गये। उनका जन्म 22 जनवरी 1919 को बिजनौर में हुआ था और 97 वर्ष की वय पूरी करने से एक मास पूर्व वे दिवंगत हो गये। यू.पी. लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगितात्मक

परीक्षा में सफल होने के फलस्वरूप उनकी नियुक्ति 1940 में यू.पी. सेक्रेटेरियट सुपीरियर सर्विस में सहायक के पद पर हुई थी और वह शासन में संयुक्त सचिव के उच्च पद पर पदोन्नत हुए। उनसे हमारा परिचय 1956 में हुआ था और सचिवालय सेवा में उनके साथ कार्य करने का सुयोग भी हमें प्राप्त हुआ था। सामान्य प्रशासन विभाग में उप सचिव के पद पर जब वह कार्यरत थे तो उन्होंने उन राजकीय कर्मचारियों को सम्मानित एवं पुरस्कृत करने की योजना को मूर्त रूप दिया जिन्होंने सरकारी कार्य को उत्कृष्ट रूप से करते रहने के साथ ही अन्य क्षेत्रों में सराहनीय उत्कृष्ट कार्य किया था। उस योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर 1972 को तत्कालीन मुख्यमंत्री पं. कमलापति त्रिपाठी द्वारा किया गया था। श्री सिन्हा पत्रिकाओं आदि में हमारे लेखन कार्य से सुपरिचित थे और जब उन्हें **हाथीगुम्फा शिलालेख** पर प्रकाशित हमारी पुस्तक की जानकारी हुई तो उन्होंने हमारे विभागीय सचिव को इस उत्कृष्ट कार्य की सूचना मुख्य सचिव को भेजने के लिए प्रेरित किया, तथा हमारा नाम उक्त योजना में प्रथम बार सम्मानित 18 राजकीय कर्मचारियों में सम्मिलित हुआ। श्री सिन्हा हमारे चाचा जी श्री अजित प्रसाद जैन के सहकर्मी थे और उन्होंने हमारे साथ भी सदैव पितृव्य सदृश व्यवहार रखा। जन्म दिवस पर हमें उनका आशीर्वाद नियमित रूप से प्राप्त होता था और परिणय की स्वर्ण जयंती व हीरक जयंती पर उनके द्वारा प्रदत्त स्नेहपूर्ण भेंट व आशीर्वाद अविस्मरणीय रहेंगे। वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृष्य पर उनसे निरंतर संवाद होता रहता था और अपने स्वतंत्र विचारों को प्रकाशित करने के लिए वे हमें प्रेरित करते रहते थे तथा अपना आशीर्वाद प्रदान करते थे। **शोधादर्श** के वह नियमित पाठक और प्रशंसक थे, तथा **Frown / संतर्जन** में प्रकाशित विचारों का अनुमोदन करते थे। विगत 5–6 माह से वह अस्वस्थ चल रहे थे तथापि निधन से एक माह पूर्व जब हमारी बात हुई तब भी उन्होंने वर्तमान परिदृष्य पर अपनी चिंता व्यक्त की और हमें चिन्तन एवं लेखन के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपने अग्रज श्री जितेन्द्र मोहन सिन्हा की काव्य कृति **पयाम–ए–रहबर** तथा अपने अनुज श्री धर्मेन्द्र मोहन सिन्हा के **रामायण** और **श्रीमद्भगवद्गीता** के गहन अध्ययन से निस्सृत अध्यात्म प्रधान ग्रन्थों को हमें उपलब्ध कराया। ये सभी कृतियां विशेष रूप से मनन–योग्य थीं और उनका परिचय हमने यथासमय **शोधादर्श** में प्रकाशित किया था। श्री सिन्हा के न रहने से हमारा एक प्रेरणा–स्रोत लुप्त हो गया।

✧✧✧

– डॉ. शशि कान्त

साहित्य सत्कार

तत्त्वार्थसूत्रम् : संकलन व सम्पादन – ब्र. शान्तीलाल जैन; प्र. मैत्री समूह द्वारा श्री पी.एल. बैनाड़ा, 1/205/आई.वी., प्रोफेसर्स कॉलोनी, हरीपर्वत, आगरा–282002

आचार्य उमास्वामी विरचित **तत्त्वार्थसूत्रम** की हिन्दी और अंग्रेजी में व्याख्या ब्र. शान्तीलाल जैन द्वारा मुनि श्री अभयसागर के मार्गदर्शन में दो भागों में की गई है। प्रथम भाग में **तत्त्वार्थसूत्र** के प्रथम अध्याय से पंचम अध्याय तक और द्वितीय भाग में छठे अध्याय से दसवें अध्याय तक की टीका प्रस्तुत की गई है। दोनों भागों का प्रत्येक का मूल्य रु. 300 है।

टीकाकार ब्र. शान्तीलाल जैन शिक्षा और व्यवसाय से इंजीनियर थे और मध्य प्रदेश इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में एक्ज़क्यूटिव डायरेक्टर रहे थे। उनका जन्म बर्बाइ, अम्बाह, मोरैना (म.प्र.) में 13 मार्च 1938 को हुआ था। सेवानिवृत्ति के बाद उनका उपयोग धर्म ग्रन्थों के अध्ययन में लगा। अंत में उन्होंने 10वीं प्रतिमा के व्रत धारण किए और सल्लेखना का अभ्यास किया। परिणाम स्वरूप 2 अप्रैल 2014 को शरीर शांत हो गया। उनके लिए यह आत्मतुष्टि की बात थी कि उनके जीवन काल में ही 29 जनवरी 2014 को उनकी टीका प्रकाशित हो गयी।

तत्त्वार्थसूत्रम् जैसे दर्शन के गहन ग्रन्थ की जो व्याख्या ब्र. जी द्वारा दी गई है वह उसके मर्म को समझने में विशेष रूप से सहायक है। ब्र. जी के इस प्रयास के लिए जैन दर्शन के अध्येता और जिज्ञासु विद्वान सदैव उपकृत रहेंगे।

परिशिष्ट रूप में मूल सूत्र पाठ भी दिया गया है और **तत्त्वार्थसूत्र** विषयक साहित्य की मुनि अभयसागर महाराज द्वारा संकलित सूची भी दी गई है। श्री पन्नालाल बैनाड़ा द्वारा यह ग्रन्थ उपलब्ध कराया गया है जिसके लिए हम आभारी हैं।

प्राकृत की पुरुषार्थ कथाएं : ले. एवं सं. प्रो. प्रेम सुमन जैन; प्र. प्राकृत भारती अकादमी; 37ए, मेन गुरुनानक पथ, मालवीय नगर, जयपुर–302017/ राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, श्रवणबेलगोला–573135; 2015; पृ. 168; मूल्य रु. 120/–

उद्योतनसूरि द्वारा रचित **कुवलयमालाकहा में** साहस, धैर्य, सदाचरण और पुरुषार्थ की अनुपम कथाएं हैं। उन्हीं के आधार पर 26 पुरुषार्थ

कथाओं को प्रो. प्रेम सुमन जैन ने इस पुस्तक में संकलित किया है। प्रो. साहब ने **कुवलयमालाकहा** का वैशिष्ट्य और उसका संक्षेप भी प्रस्तुत किया है। परिशिष्ट के रूप में **कुवलयमालाकहा** के अनुच्छेद 1 से 12 का मूल के साथ अनुवाद भी दिया है।

कुवलयमालाकहा प्राकृत भाषा में निबद्ध कथा ग्रन्थ है। आचार्य उद्योतनसूरि ने शक सम्वत् 700 पूर्ण होने में एक दिन शेष था तब चैत्र बदी 14 के दिन इसकी रचना पूर्ण की थी, तदनुसार रचना 21 मार्च 779 ई. को सम्पन्न हुई।

इस कथा ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रो. प्रेम सुमन जी ने जो सामग्री प्रस्तुत की है वह कथा ग्रन्थ और उसके कर्ता के महत्व को सहजतापूर्वक निरूपित करती है। इसके लिए प्रो. साहब को साधुवाद!

मोक्षमार्ग प्रकाशक के मंगलसूत्र : सं. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; प्र. समन्वयवाणी जिनागम शोध संस्थान, 129, जादौन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर–302018; 26 जनवरी 2015; पृ. सं. 64

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ने आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी के ढूंढारी भाषा में रचित **मोक्षमार्ग प्रकाशक** से मंगल सूत्रों का संकलन किया है। उनका हिन्दी भाषा में रूपान्तर भी दिया है। "अपनी बात में" डॉ. बंसल ने इस ग्रन्थ के महत्व और उसकी विषयवस्तु के सम्बन्ध में जो चर्चा की है उससे इस ग्रन्थ के अध्ययन और इसके लेखक के सम्बन्ध में जिज्ञासा जागृत होती है। इस संकलन के प्रकाशन के लिए संकलनकर्ता और प्रकाशक को साधुवाद!

विश्व के धर्म : अहिंसा और शाकाहार : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, सं. श्री अखिल जैन बंसल; प्र. समन्वयवाणी जिनागम शोध संस्थान; जयपुर; 2 अक्टूबर 2011; पृ. 136; मूल्य रु. 20/–

डॉ. बंसल द्वारा प्रस्तुत "शब्द यात्रा" से उनकी लेखन में प्रगति का परिचय प्राप्त होता है।

पुस्तक के **भाग–1** में अहिंसा का विवेचन है जिसमें जैन, बौद्ध, वैदिक, सिख, इसाई, इस्लाम, जरथ्रुस्त्रयन (पारसी) और यहूदी धर्मो की अपेक्षा से अहिंसा के महत्व को प्रस्तुत किया गया है।

भाग–2 में शाकाहार के महत्व को परिभाषित किया गया है। शाकाहार क्यों श्रेष्ठ आहार है, इसका विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

शाकाहार का वैज्ञानिक आधार सामान्य ज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। शाकाहार का विश्व के सभी धर्मो द्वारा समादर किया गया है।

डॉ. बंसल द्वारा अहिंसा और शाकाहार के सम्बन्ध में जो विवेचना की गई है वह सामान्य पाठक की दृष्टि से उपयोगी है। इस कृति के प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक को साधुवाद! इस वर्ष 6 दिसम्बर को 'अहिंसा इन्टरनेशनल' द्वारा डॉ. बंसल को शाकाहार के प्रचार के लिए सम्मानित भी किया गया है।

सरल करणानुयोग प्रवेश (जीवस्थान चर्चा खण्ड–1) : सं. ब्र. संदीप 'सरल'; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)–470113; 2015; पृ. 114+6

ब्र. संदीप 'सरल' ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में उल्लेख किया है कि अनेकान्त ज्ञान मंदिर द्वारा चलाये जा रहे शिक्षण शिविरों में अध्ययन कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है। इसमें 15 पाठों के अंतर्गत 3 लोकों का स्वरूप, 14 गुणस्थान, जीव समास, और 20 प्ररूपणाओं की विषय वस्तु प्रस्तुत की गई है। दो परिशिष्ट भी विषय को स्पष्ट करने के लिए दिए गये हैं। पुस्तक प्रश्नोत्तर शैली में निबद्ध है। विषय के महत्व को रेखांकित करने और सहज रूप से परिचय देने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

घर की चिकित्सा : ले. वैद्य प्रकाशचंद्र जैन पांड्या; 64/46, स्योपर रोड, गुलाब विहार के आगे वाली गली, हनुमान उद्यान के सामने, प्रताप नगर (सांगानेर), जयपुर (राज.)–302017; 30 अप्रैल 2012; पृ. 64; मूल्य रु. 75

लेखक चिकित्सक रहे हैं और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर 61 रोगों की घरेलू चिकित्सा बतायी है। स्वस्थ रहने के नियम भी बताये हैं। सामान्य ज्ञान की दृष्टि से पुस्तक उपयोगी है।

गोमती (काव्य ग्रन्थ) : ले. श्री दयानंद जड़िया 'अबोध'; प्र. त्रिमूर्ति प्रकाशन, 370/27, हाता नूरबेग, संगमलाल वीथिका, सआदतगंज, लखनऊ–226003; 2015; पृ. 40; मूल्य रु. 100/–

श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' ने गोमती नदी से सम्बन्धित अपनी सभी रचनाओं को इस पुस्तक में संकलित किया है। यह पुस्तक उनकी प्रकाशित पुस्तकों की पुष्पवाटिका का 43 वां प्रफुल्लित पुष्प है। प्रारंभ में

अपने लेख "गोमती की अन्तर्व्यथा" में गोमती नदी की वर्तमान प्रदूषित स्थिति की चर्चा की है और यह भी कामना की है कि पुनः वह प्रदूषण–मुक्त हो जाये। गोमती नदी के सम्बन्ध में इसके उद्गम, वर्तमान प्रदूषण, गउघाट, और दायें तथा बायें तटों पर स्थित ऐतिहासिक एवं वर्तमान सुरम्य स्थलों की झांकी काव्य रूप में प्रस्तुत की गई है। अवधी भाषा में दोहा और चौपाई में **गोमती चालीसा** निबद्ध किया गया है। **जयति आदि गंगा** के नाम से एक कीर्तन भी निबद्ध है। आरती भी प्रस्तुत की गई है। गोमती नदी पर छन्द बद्ध जो भावना व्यक्त की गई है वह 'अबोध' जी की कवि प्रतिभा की परिचायक है। गोमती महोत्सव के अवसर पर इस काव्य ग्रन्थ का लोकार्पण किया गया था जो इसके साहित्यिक एवं सामयिक महत्व को निर्देशित करता है।

धर्ममंगल : सं. श्रीमती लीलावती जैन; 1 सलिल अपार्टमेंट, 57 सानेवाडी, औंध, पुणे –411007; 2 नवम्बर 2015

धर्ममंगल के दिनांक 2 नवम्बर 2015 के अंक में मुनिचर्या में शिथिलाचार से सम्बंधित 42 लेख संकलित हैं। ये लेख 2–5–2000 से 2010 की अवधि में श्रीमती लीलावती द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित किये गये थे। जो लेख पत्रिका के इस अंक में संकलित हैं वे सभी समाज को जागरूक करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। विस्मय की बात यह है कि हमारी समाज का नेतृत्व वर्ग तथ्यों की अनदेखी कर रूढ़िगत परम्परावाद के पोषण में लगा हुआ है। **शोधादर्श** में भी समाज को जागरूक करने सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते रहते हैं। श्रीमती लीलावती जी अपने साहस के लिऐ अभिनन्दनीय हैं।

युगों से युगों तक दशपुर (वर्तमान मंदसौर) : ले. श्री सुरेन्द्र लोढ़ा; प्र. श्री राजेन्द्रसूरि शताब्दी शोध संस्थान, 87/2, विक्रम मार्ग, टावर चौक, एस. एम. काम्प्लेक्स, फ्री गंज, उज्जैन; 2013; पृ. 376; मूल्य रु. 250/–

श्री सुरेन्द्र लोढ़ा विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं और **शाश्वत् धर्म** पत्रिका के सम्पादक भी हैं। उन्होंने अपने प्राक्कथन में यह उल्लेख किया है कि उन्होंने तदपि इतिहास का व्यापक अध्ययन कर मध्य प्रदेश के मन्दसौर क्षेत्र का इतिहास इस ग्रन्थ में निबद्ध किया है। प्राग्ऐतिहासिक काल से लेकर वर्तमान युग तक 49 अध्यायों में उन्होंने दशपुर अर्थात् वर्तमान मन्दसौर का इतिहास दिया है। विवरण की प्रस्तुति में लेखक की शोधवृत्ति मुखर है।

परिशिष्ट भी दिये गये हैं, जो कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का परिचय देते हैं। पुस्तक में आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं जो उसकी रोचकता को बढ़ाते हैं। 1857 में विप्लव के दौरान मन्दसौर में अंग्रेजी सेना को विशेष रूप से जोरदार टक्कर दी गयी थी, उसका विशेष विवरण पुस्तक में दिया गया है। जैन धर्म से सम्बन्धित विशेष विवरण भी इसमें संकलित हैं। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है।

वैशाली इन्स्टीट्यूट रिसर्च बुलेटिन : अंक 24; सं. प्रो. डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन; प्र. प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोधसंस्थान, वैशाली–844128; 2013; पृ. 218; मूल्य 275/–

सम्पादकीय में प्रो. ऋषभ चंद्र जैन ने वर्ष 2013 में संस्थान में हुई व्याख्यान मालाओं का विवरण दिया है जिससे संस्थान द्वारा शोध की दिशा में की जा रही गतिविधियों का परिचय प्राप्त होता है। बुलेटिन के इस अंक में 21 शोधपरक लेख प्रकाशित हैं। डॉ. ऋषभ चंद्र जैन, डॉ. जय कुमार जैन, डॉ. अनेकांत कुमार जैन, डॉ. महेश्वर प्रसाद सिंह, डॉ. सियाराम तिवारी, डॉ. कपूरचंद जैन, डॉ. अनुपम जैन, डॉ.पी.सी. जैन, डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, श्री धन्यकुमार जैन, डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन, श्री हरिश्चंद्र सत्यार्थी एवं श्री ऋतेष कुमार द्वारा हिन्दी में लिखे गये शोध लेख इसमें प्रकाशित हैं। अंग्रेजी में हमारा लेख Interpreting the Ancient Epigraphs of India भी इसमें प्रकाशित किया गया है जिसके लिए हम सम्पादक महोदय के आभारी हैं।

– डॉ. शशि कान्त

आभार

श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ, ने श्रुतपंचमी के उपलक्ष में रु. 500/– भेंट किए।

सान्ध्य–महालक्ष्मी, दिल्ली, के सम्पादक **श्री शरद कुमार जैन** ने अपनी माता जी **श्रीमती हेमबाला जैन** की पुनीत स्मृति में रु. 1100 भेंट किए।

श्री वीर कुमार दोशी, अकलुज, ने अपने माता–पिता की पुनीत स्मृति में रु. 51/– भेंट किए।

अभिनन्दन

2 अक्टूबर को सागर में श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद की कार्यकारिणी समिति के उपवेशन में श्री गणेशवर्णी दिगम्बर जैन महाविद्यालय के प्राचार्य **पं. ज्ञानचंद जैन व्याकरणाचार्य** को **'पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मृति विद्वत्परिषद पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया।

4 अक्टूबर को दिल्ली में जैन समाज के शीर्ष महानुभावों के सम्मान समारोह में **श्री ए.के. जैन** (आई.आर.एस. रिटा.) को **समाज गौरव** के अलंकरण से विभूषित किया गया।

18 अक्टूबर को साहिबाबाद (गाजियाबाद) में **डॉ. श्रेयांस कुमार जैन** (बड़ौत) का अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ और उनके व्यक्तित्व–कृतित्व पर आधारित **श्रुताराधक अभिनन्दन ग्रन्थ** का लोकार्पण किया गया।

23 अक्टूबर को भीलवाड़ा में आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर, के तत्त्वावधान में और श्री राजेन्द्र नाथूलाल जैन मेमोरियल चेरिटेबुल ट्रस्ट, सूरत, के सौजन्य से **पार्श्व ज्योति** व **जैन तीर्थ वंदना** के प्रधान सम्पादक, बुरहानपुर के **डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'** को पुरस्कृत किया गया और उनकी कृति **सुधोदय** का लोकार्पण किया गया।

24 अक्टूबर को जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन में आयोजित 17वें आध्यात्मिक शिक्षण शिविर के अवसर पर **डॉ. प्रेमचंद रांवका** (जयपुर) को **गोपालदास बरैया पुरस्कार, ब्र. हेमचंद हेम** (देवलाली) को **गणेश प्रसाद वर्णी पुरस्कार** और **डॉ. संजीव कुमार गोधा** (जयपुर) को **पंडित प्रवर टोडरमल पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

25 अक्टूबर को फरीदाबाद में **डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा** (कोलकाता) को **तरुण क्रान्ति पुरस्कार–2015** से सम्मानित किया गया।

5–6 दिसम्बर को सोनागिर में सम्पन्न ज्ञानसागर फाउण्डेशन के चौथे अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलन में **डॉ. डी.सी. जैन** (प्रसिद्ध न्यूरोलॉजिस्ट, दिल्ली) को न्यूरोलॉजी के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के साथ शाकाहार और जीवदया के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य के लिए **दूसरा जैन लॉरियट अवार्ड** प्रदान किया गया; तथा सेल्वानिया की सुश्री **एनाबेजल** को **प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान प्रोत्साहन पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। सुश्री एना कुन्दकुन्द व उमास्वामी के साहित्य पर शोध कर रही हैं और वह पूर्णतः शाकाहारी हैं।

13 दिसम्बर को प्रतापगढ़ में **आचार्य श्री आदि सागर (अंकलीकर) अन्तर्राष्ट्रीय जागृति मंच मुम्बई** द्वारा **डॉ. उदयचन्द्र जैन** (उदयपुर), **श्री कमल कुमार पाटनी** (दुर्ग), **प्रो. दीनानाथ शास्त्री** (अहमदाबाद), **डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'** (बुरहानपुर) और **श्री त्रिलोकचन्द्र गोधा** (जयपुर) को उत्कृष्ट कार्य हेतु पुरस्कृत किया गया।

संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में पत्रकार, कवि एवं टेलीविज़न कार्यक्रमों के निर्माता **श्री प्रदीप जैन** को संसदीय हिन्दी परिषद द्वारा **राष्ट्र भाषा गौरव** सम्मान प्रदान किया गया।

प्रो. फूलचंद प्रेमी को जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं में **एमेरीटस प्रोफेसर** नियुक्त किया गया।

लखनऊ के **श्री अक्षत जैन** ने **आई.ए.एस. परीक्षा, 2014** में सफलता प्राप्त की। वह श्री आशीष कुमार जैन एवं श्रीमती निरूपमा जैन के सुपुत्र हैं।

सनावद के **श्री राजेन्द्र जैन 'महावीर'** को मध्य प्रदेश शासन के शिक्षा विभाग में **शिक्षक दिवस** पर सम्मानित किया गया।

श्रीमती सीमा जैन (डॉ. प्रेमसुमन जैन की पुत्रवधु और श्री संजय जैन की पत्नी) को मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, द्वारा **पद्मनन्दिकृत प्राकृत ग्रन्थ धम्मरसायनं का मूल्यांकन** विषयक शोध–प्रबन्ध पर पी–एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई।

शोधादर्श **का समस्त परिवार और तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यश–वृद्धि के लिए हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।**

शोक संवदेन

8 जून को प्रतिमाशास्त्र के पुरोधा 89–वर्षीय **डॉ.रतन चन्द्र अग्रवाल** का जयपुर में निधन हो गया।

14 जुलाई को लखनऊ में 90–वर्षीय **डॉ. सुरेन्द्र कुमार** दिवंगत हो गये।

26 जुलाई को मेरठ में 95–वर्षीय **श्री शांति प्रकाश जैन** (आई.ए.एस. रिटा.) का निधन हो गया।

24 अगस्त को जबलपुर में प्रतिष्ठित विद्वान 90–वर्षीय **डॉ. लक्ष्मी चन्द्र जैन** का निधन हो गया।

1 अक्टूबर को लखनऊ में 88–वर्षीय **डॉ. (श्रीमती) सरला शुक्ला** का निधन हो गया।

9 अक्टूबर को मुम्बई में संगीतकार 71–वर्षीय **पद्मश्री श्री रवीन्द्र जैन** का निधन हो गया।

20 अक्टूबर को दिल्ली में श्री श्रीकिशोर जैन कीं धर्मपत्नी और **सान्ध्य–महालक्ष्मी** के सम्पादक श्री शरद कुमार जैन की माता जी 74–वर्षीय **श्रीमती हेमबाला जैन** शांत परिणामों के साथ दिवंगत हो गई।

11 नवम्बर को लखनऊ में 90–वर्षीय सुश्रावक **श्री प्रेमचंद जैन** का निधन हो गया।

19 नवम्बर को लखनऊ में ही 94–वर्षीय **श्री रामकृष्ण त्रिवेदी** (पूर्व राज्यपाल) का निधन हो गया।

25 नवम्बर को इन्दौर में 85–वर्षीय **डॉ. नरेन्द्र प्रसाद जैन** का निधन हो गया। वह भारतीय विदेश सेवा के सदस्य रहे थे और कई देशों में भारत के राजदूत रहे थे।

22 दिसम्बर को लखनऊ में 97–वर्षीय **श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा** का शरीर शांत हो गया। श्री सिन्हा एक मनस्वी चिन्तक थे और **शोधादर्श** के प्रेरणास्रोत भी थे।

अक्टूबर में हमारी समिति के उपाध्यक्ष डॉ. विनय कुमार जैन के साले **श्री सुखनन्द जैन** एवं **श्री अनिल जैन** का दिल्ली में आकस्मिक निधन हो गया। समिति के कोषाध्यक्ष श्री बिजय लाल जैन के साले **श्री सरोज कुमार जैन** का 30 दिसम्बर को लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया।

उपरोक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार की भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित है और शोक से संतप्त परिवारों के प्रति हार्दिक संवेदना निवेदित है।

✧✧✧

– नलिन कान्त जैन

समाचार विविधा

भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई

भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई, द्वारा 1994 में **भगवान महावीर पुरस्कार** की स्थापना की गई थी। 21 अगस्त को चेन्नई के कस्तूरी श्रीनिवासन हॉल में 18वें महावीर पुरस्कार वितरित किये गये। ये पुरस्कार शिक्षा, चिकित्सा, समाजिक सेवा, तथा अहिंसा व शाकाहार के प्रचार के क्षेत्र में निःस्वार्थ भावना से उल्लेखनीय कार्य करने वाली संस्थाओं को प्रदान किये जाते हैं। इस वर्ष अहिंसा व शाकाहार वर्ग में विशाखापट्टनम (आन्ध्र प्रदेश) की **विशाखा सोसायटी फ़ॉर प्रोटेक्शन एण्ड केयर ऑफ़ एनिमल्स** को, शिक्षा वर्ग में वेदारानियम (तमिलनाडु) के **कस्तूरबा गांधी कन्या गुरुकुलम** को, चिकित्सा वर्ग में कोलकाता (पश्चिम बंगाल) के **सेन एण्ड एन्थुसियास्ट वोलन्टियर्स एसोसिएशन** को, तथा सामाजिक उत्थान व सेवा वर्ग में रांची (झारखंड) की **विकास भारती** संस्था जो पिछड़ी जनजाति में शिक्षा, चिकित्सा, कृषि और आजीविका हेतु उत्थान का कार्य कर रही है, को पुरस्कार प्रदान किये गये। प्रति पुरस्कार एक प्रशस्ति पत्र, भगवान महावीर की प्रतिमा तथा दस लाख रुपये की नकद राशि प्रदान की जाती है।

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी

दिनांक.1 सितम्बर से 10 सितम्बर तक राष्ट्रीय ज्योतिष कार्यशाला सम्पन्न की गई। उसमें जैन धर्म में ज्योतिष सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डाला गया। कार्यशाला में 85 विद्वानों ने भाग लिया। प्रोफेसर अशोक कुमार जैन इस कार्यशाला के निर्देशक थे। विद्वानों द्वारा शोध पत्रों के वाचन के अतिरिक्त **शोध निस्पन्द** नामक शोध पत्रिका का विमोचन भी किया गया। श्री सुरेन्द्र कुमार जैन कार्यशाला के संयोजक थे।

राष्ट्रीय जैन विद्वत् गोष्ठी

गढ़ाकोटा (जि. सागर) में 5 दिसम्बर को अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के तत्त्वावधान में **राष्ट्रीय जैन विद्वत् गोष्ठी** आयोजित की गई। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' ने संयोजन किया। संगोष्ठी में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के **समयसार** पर दिए गये

उपदेशों से युक्त **समयोपदेश भाग–2** का विमोचन किया गया। संगोष्ठी में लखनऊ के प्रोफेसर वृषभ प्रसाद जैन ने सहभागिता की। डॉ. जय कुमार जैन ने संगोष्ठी की अध्यक्षता की। डॉ. श्रेयांस कुमार जैन और प्राचार्य डॉ. शीतलचंद जैन सारस्वत अतिथि थे।

राष्ट्रहित में जैन समुदाय के योगदान पर कार्यशाला

22 नवम्बर को महाराष्ट्र प्रदेश के जि. सोलापुर में स्थित अकलुज में पूर्व–सैनिक श्री वीर कुमार दोशी ने राष्ट्रहित में जैन समुदाय के योगदान पर एक कार्यशाला का आयोजन किया। श्री दोशी भारतीय वायुसेना में 1952 से 1967 तक सेवारत थे और एक प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता हैं। यह कार्यशाला अकलुज में स्थित 'माजी सैनिक मार्गदर्शन केन्द्र' के तत्त्वावधान में आयोजित की गई। इस कार्यशाला का उद्देश्य यह था कि समाज के युवावर्ग को उन विशिष्ट व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त हो जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रहित में अपनी सेवाएं प्रदान कीं। डॉ. शशि कान्त ने इस कार्यशाला के सफल सम्पादन के लिए अपनी शुभ कामना निम्नवत् भेजी –

It is heartening to know that Shri Veer Kumar Doshi, an Ex-Serviceman and an eminent social worker, is convening a Workshop on November 22, 2015, at Akluj (District Solapur, Maharashtra) on the contribution of the Jain community in national cause.

It is a well known fact that although the Jain community is numerically small, it has been in the forefront in all national programmes. It is also a significant fact that the members of this community are, by and large, educated. Their contribution in different fields, eg., administration, education and engineering, medical, legal and accountancy professions, has been much higher in proportion to the numerical strength of the community. It is a matter of pride that one Chief Justice of India (Justice Rajendramal Lodha) belonged to this community. In the educational field Dr. Daulat Singh Kothari was Chairman of the University Grants Commission.

Jainism is one of the basic currents of Indian culture. But due to some bias it was not being given due place in our cultural history. During the last century some intelligent members of the community devoted their time and energy to restore the legitimate place of Jainism in the composite Indian cultural heritage. In this connection a reference

needs to be made to my father, Dr. Jyoti Prasad Jain, whose centenary was celebrated in 2012.

Dr. Jain was a scholar of international repute and an acknowledged authority on Indology with particular reference to Jainology. His field of specialization covered history, culture, literature, art, religion and philosophy. **The Jaina Sources of the History of Ancient India,** his *magnum opus*, is the only authentic work on the subject. Another important work, **Bharatiya Itihasa : Ek Drishti,** (in Hindi), gives a new dimension to the study of Indian History by doing justice to South India and to sources other than the Buddhist and Brahmanical. His **Religion and Culture of the Jains** is an epitome on Jainism, simple and lucid in style but comprehensive in treatment. Multiple editions of these works have been published. His objective approach and comprehensive vision will always guide to study history in proper perspective.

It may be specifically mentioned that the conviction of the Jains with **Ahimsa** (Non-violence) has never been a deterrent for the Jain young men to join the Defence Services, as also the Indian Police Service. The convener of this Workshop Shri Veer Kumar Doshi himself served in the Air Force and my nephew Manish Jain is a Colonel in the Indian Army. The principle of **Anekanta** (Multi-lateral process of thinking) is also a significant contribution of the Jain community. It provides for peaceful co-existence of diverse faiths and ideologies.

The gentry participating in the Workshop by their experiences in life and their efforts to contribute to the national cause, will surely inspire the younger generation to more actively contribute in shaping and developing our country as a progressive nation. The community as a whole is committed to help in forging an integrated national environment which will not allow narrow dogmatism to spoil unity.

My best wishes are for the success of the Workshop and I whole-heartedly express my thanks and gratitude to the conveners and participants of this Workshop.

संथारा पर हंगामा

- डॉ. शशि कान्त

93–वर्षीय वृद्धा केला देवी हीरावत ने सितम्बर 2006 में जयपुर में संथारा द्वारा शरीर त्याग किया था। जो समाचार उस समय विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे उनमें इस बात का उल्लेख था कि यद्यपि वृद्धा पानी के लिए तड़पती रही उसके परिवार वालों ने धर्म की दुहाई देते हुए उसे पानी नहीं दिया और प्यासी ही मरने दिया। मानवाधिकार के कार्यकर्ता और वकील निखिल सोनी तथा एक अन्य वकील माधव मिश्रा ने राजस्थान उच्च न्यायालय में एक लोकहित याचिका उस वृद्धा की कारुणिक त्रासदी से द्रवित होकर प्रस्तुत की थी जिसमें संथारा को धार्मिक क्रिया न कहकर एक सामाजिक विकृति विवेचित किया था और यह प्रार्थना की थी कि संथारा को भारतीय विधि–विधान में आत्महत्या माना जाये, तथा उसको प्रोत्साहित करने वालों को आत्महत्या को प्रेरित करने का दोषी माना जाये। यह याचिका सितम्बर 2006 में प्रस्तुत की गई थी परन्तु इस पर निर्णय 10 अगस्त 2015 को प्रायः 9 वर्ष बाद माननीय उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया।

जिस रूप में उस वृद्धा को प्यास से तड़पते हुए मरने दिया गया उस पर किसी धर्मात्मा की कारुणिक दृष्टि नहीं गई। जिन दो व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की थी वे जैन धर्म के अनुयायी नहीं हैं और यह भी स्पष्ट नहीं है कि उनकी करुणा क्यों जागृत हो गई यदि वे उस वृद्धा के पड़ोसी नहीं थे और इस कारुणिक दृश्य के प्रत्यक्ष दर्शी नहीं थे। जिन दिनों यह प्रकरण चर्चा में था उससे उद्वेलित होकर हमारे अनुज स्मृतिशेष रमा कान्त ने एक क्षणिका लिखी थी जो **शोधादर्श** के नवम्बर 2006 के अंक में प्रकाशित भी हुई थी –

संथारा लिया, वृद्ध महिला ने, उसका शोर यहां मचा खूब।
कितना उचित, कितना अनुचित यह, चर्चा में मीडिया गया डूब।।
सास–पीड़ित बहुओं के हाथ लगा क्या खूब अमोघ उपाय।
भारी लगे जब सास जी, संथारा ही उन्हें दो सुझाय।।

राजस्थान उच्च न्यायालय का निर्णय आने के बाद जैन समाज के सभी आम्नायों, पंथों और सम्प्रदायों में धर्मोन्माद जनित आक्रोश का प्रस्फुटन होने लगा। सुप्रीम कोर्ट में सम्पूर्ण जैन समाज की ओर से प्रतिवाद–याचिकाएं प्रस्तुत की गईं। 31 अगस्त, 2015, को ही प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति एच.एल.दत्तू और न्यायमूर्ति अमिताभ राय की पीठ के समक्ष तत्सम्बन्धी याचिकाएं विचारार्थ प्रस्तुत की गईं। प्रधान न्यायाधीश ने 60 सेकेण्ड का समय भी न लेकर तत्काल राजस्थान हाई कोर्ट के आदेश पर रोक लगा दी।

पूरा जैन समाज न्यायमूर्ति दत्तू जी की सदाशयता से अभिभूत हो गया। जैन समाज में 15–20 लाख रुपये की व्यवस्था इन याचिकाओं को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए की गयी थी। जो वकील इस काम के लिए किए गए थे उनमें नामी–गिरामी जैन धर्मानुयायी वकील भी थे और ऐसा सुनने में आया था कि उनकी एक पेशी की फीस एक लाख रुपये होती थी। वकील लोग पेश तो हो ही गये, यह बात दूसरी है कि उन्हें कुछ भी बोलना नहीं पड़ा; यह बात गोपनीय रही कि क्या उस स्थिति में भी उन्होंने अपनी फीस ली या नहीं।

न्यायमूर्ति दत्तू जी ने किस अनौपचारिक परामर्श के आधार पर अपना तत्काल निर्णय दिया इसके बारे में जानकारी करने की जैन समाज के नेतृत्व वर्ग, वकील वर्ग और विद्वत् वर्ग को कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई; उन सभी को मुक्ति का सुख मिल गया, उससे अधिक क्या चाहिए!

एक चिन्तनशील जिज्ञासु के नाते हमें इस शंका के समाधान का आभास यह हुआ कि दत्तू जी ने अपने गुरु सदृश–मान्य, पूर्व प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति राजेन्द्रमल लोढ़ा जी से कदाचित् अनौपचारिक परामर्श किया होगा। लोढ़ा जी नैष्ठिक जैन धर्मानुयायी हैं, ऐसा सुना जाता है। उन्होंने अपने सत्परामर्श से धर्मनिष्ठ जैन समाज का उपकार तो किया ही, अपने साथी न्यायमूर्तियों को जैन दर्शन की पेचीदगियों में उलझने से भी बचा लिया क्योंकि अब यदि उस सम्बन्ध में प्रस्तुत याचिकाओं पर कोई विचार–विमर्श/सुनवाई/निर्णय सुप्रीम कोर्ट द्वारा किया जायेगा तो सुप्रीम कोर्ट में लम्बित वादों की श्रृंखला में उसका नम्बर लगभग 25 वर्ष बाद आयेगा और तब तक स्वयं दत्तू जी, राय जी और लोढ़ा जी समाधिष्ठ हो चुके होंगें।

जैन समाज की सभी पत्र–पत्रिकाओं में राजस्थान हाई कोर्ट के निर्णय से प्रेरित होकर संथारा के महत्व को सूचित करने के लिए विद्वान मनीषियों द्वारा लेख लिखे गये। एक संगोष्ठी भी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, में 5 अक्टूबर 2015 को आयोजित की गई। विस्मय की बात यह है कि किसी भी लेख में और किसी भी विद्वान द्वारा अभी तक यह नहीं बताया गया कि संथारा किस भाषा का शब्द है, उसकी अक्षरी या वर्ण–योजना क्या है, शब्द **संथारा** है या **सन्थारा** है, उसका शब्दार्थ क्या है, इस शब्द का साहित्य में कब से प्रयोग किया गया है, और इसे सल्लेखना तथा समाधि से कब से समीकृत किया गया है।

जहां तक हमारी जानकारी है, संथारा राजस्थानी देशज शब्द है। संथारा की प्रथा राजस्थान में विगत् 200 वर्ष से गृहस्थ समुदायों में प्रचलित है और वृद्ध महिलाओं द्वारा ही उसका पालन किया या कराया जाता है। यह प्रथा व्यवहार में या प्रचलन में Euthanasia से उलट है; Euthanasia में मृत्यु को सहज किया जाता है जबकि जिस रूप में संथारा की क्रिया सम्पादित होती है वह सहज मृत्यु नहीं कही जा सकती है। संथारा का सल्लेखना और समाधि से समीकरण किया जाना भी एक दूर की कौड़ी है।

किसी भी सम्प्रदाय के साधु–साध्वी द्वारा संथारा की क्रिया द्वारा देह मुक्ति के कोई प्रसंग अभी तक हमारे संज्ञान में नहीं आये हैं। डॉ. प्रेम सुमन जैन ने जो उदाहरण दिये हैं उनमें 1950 में जैन दिवाकर चौथमल द्वारा संथारा साधना के साथ महाप्रयाण करने और 1991 में आचार्य हस्तिमल जी द्वारा 13 दिवसीय संथारा काल का उल्लेख तो समीचीन लगता है परन्तु जैनाचार्य शांति सागर जी की सल्लेखना (1955) तथा भारत–रत्न आचार्य विनोबा भावे द्वारा समस्त इच्छाओं, औषधियों और आहार के त्याग को भी संथारा का नाम दिया जाना कदाग्रह की श्रेणी में आता है। जिस प्रकार जैन समाज में वृद्धा केला देवी हीरावत के संथारा से उत्पन्न आन्दोलन का रूप प्रकट हुआ है वह एक प्रकार के धार्मिक उन्माद को उकसाने वाला कहा जा सकता है।

हमारा विद्वत् वर्ग से अनुरोध है कि वे संथारा शब्द के विषय में सयुक्तिक स्थिति स्पष्ट करने का अनुंग्रह करें एवं सल्लेखना व समाधि के दार्शनिक विवेचन के आधार पर गृहस्थ वृद्ध महिलाओं के सम्बन्ध में संथारा के दुष्प्रयोग पर समाज को जागरूक करें। ✧

पाठकों के पत्र

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव, भिलाई

शोधादर्श–81 में गुरूगुण–कीर्तन स्तंभ के अन्तर्गत वरिष्ठ विद्वान श्री वेद प्रकाश गर्ग का लेख 'अपभ्रंश भाषा के साहित्यकार : धनपाल' शोधपरक रचना के रूप में प्रभावशाली है। उसी प्रकार इतिहास मर्मज्ञ डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख है 'अयोध्या'। लेख लिखने की अवधि (1979) तक के अयोध्या का इतिहास इसमें वर्णित है। मार्गदर्शक डॉ. शशि कान्त की टिप्पणी इस लेख के लिए परमावश्यक थी। 'भगवान ऋषभदेव और अयोध्या' लेख में उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री जी.डी. तपासे ने अयोध्या को वैदिक, जैन, बौद्ध आदि सभी परम्पराओं से सम्बद्ध बताया है जो इतिहास–सम्मत है। श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा ''कर्तव्य बोध : जैन धर्म के मूल तत्व'' आलेख में अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य एवं अचौर्य की विशद व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि इन्हें जैन साधु महाव्रत के रूप में और श्रावक अणुव्रत के रूप में धारण करता है।

श्रीमती मंजरी जैन का लेख 'नारी की मर्यादा' बहुत अच्छी एवं सामयिक रचना है। सुमेरिया–बेबीलोनिया में मातृदेवियां इनन्ना, इश्तर, व आइसिस थीं। **ऋग्वेद** के अध्येता विद्वानों के अनुसार, वैदिक ऋचाओं के मंत्रदृष्टा केवल ऋषि ही नहीं थे, अनेक ऋषिकांए भी थीं, केवल तीन नहीं। हां यह सच है कि हमारी वर्तमान शिक्षा में अधिकतर यही तीन नाम उदाहरणार्थ बताये जाते हैं। उनके कुछ नाम और भी हैं यथा –रोमशा, अदिति, इन्द्रस्नुषा, इन्द्राणी, गोधा, घोषा, शची पौलोमी, कशिया, सार्पराज्ञी, आदि–आदि । वैदिक ऋषिकाएं ऋषियों से कम गौरवान्वित अथवा महिमा मण्डित भी नहीं थीं। सुश्री मंजरी जी के अनुसार, ''संभवतः आर्य संस्कृति में पुरुष प्रमुखता ही आगे चलकर **मनु** के **धर्मशास्त्र** में नारी के लिए किंचित् अभिशप्त स्थिति का निरूपण करने के लिए उत्तरदायी है''। इस कथन से ध्वनित होता है कि जैन एवं बौद्ध संस्कृतियां अनार्य संस्कृतियां हैं, आर्य संस्कृतियां नहीं। शायद सुश्री मंजरी का आशय 'वैदिक संस्कृति'' कहने का रहा होगा। पृ. 33 पर 'जैन दार्शनिक चिन्तन' में लोक या जगत के अन्तर्गत 'अनादि–निधन' के स्थान पर 'अनादि–अनन्त' होना चाहिए था।

'बीस न तेरा : आगम पंथ मेरा' शीर्षक वाले लेख में श्री सुरेश जैन 'सरल' ने बड़ी बेबाकी से जैन धर्म के बिखराव पर कटाक्ष किया है। उनके धार्मिक एकता के विचार मुझे डॉ. शशि कान्त के विचारों से मेल खाते जान

पड़ते हैं। अमेरिका में बसे सभी जैन पंथों के अनुयायियों का उदाहरण अनुकरणीय है। इसका मुख्य कारण है कि वहां केवल जिनोपासक या जैन आराधक श्रावक हैं, न कोई किसी पंथ–विशेष का सन्त है न मठाधीश, जिनकी हमारे देश में भरमार है।

डॉ. राम कुमार दीक्षित मेरे छात्र जीवन के समय विभागाध्यक्ष थे। उनका लेख "Evolution of Jina Image" संक्षिप्त किन्तु सम्यक् रूप से विषय का प्रतिपादन करता है। Both the Poems 'Success' and 'Holi' of Miss Sanchita Mittal are very interesting in content as well as in rhyme. She deserves congratulation. महाकवि परमानन्द जड़िया की काव्य प्रस्तुति 'अहिंसा व्रत सर्वोत्तम' शब्द–संयोजन, अलंकार–आभरण तथा भावाभिव्यंजन – सभी दृष्टियों से सुन्दर है, प्रेरणाप्रद है, अनुकरणीय है। पूरी कविता में अनुप्रास की छटा मनमोहक है, यथा – पर पीड़ा, उद्वेग–द्वेष, भजन भगवान भरोसे, भर देते भण्डार, दोष–दुर्गुण आदि।

श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', सआदतगंज, लखनऊ

शोधादर्श–81 में आपने मेरी पुस्तक "ये हैं अबोध के नवीन छन्द" पर समीक्षा प्रकाशित की, एतदर्थ आभारी हूं।

इस अंक के सभी लेख शोधपूर्ण व ज्ञानवर्द्धक हैं। कवितायें भी अच्छी हैं। अंक पठनीय व संग्रहणीय है जो गुदड़ी में लाल की कहावत को चरितार्थ करता है।

श्री पी.एन. सुकुल, लखनऊ

शोधादर्श–81 दो दिन पूर्व प्राप्त हुआ है और कल आपके पूज्य पिताजी से मेरी बात भी हुई है। आपकी इस पत्रिका से काफी ज्ञान लाभ होता रहा है।

श्री बी.डी. अग्रवाल, लखनऊ

शोधादर्श–81 को मैंने आद्योपान्त पढ़ा। पत्रिका का स्वरूप दिन प्रतिदिन निखर रहा है, यह हर्ष का विषय है।

आज जब अयोध्या बहस का विषय बन गई है स्मृतिशेष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'अयोध्या' सामयिक है तथा वस्तुस्थिति को दर्शाता है। अन्य लेख भी शोध का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

कुमारी संचिता मित्तल की अंग्रेजी कवितायें पढ़कर विशेष प्रसन्नता हुई। बच्चों को उत्साहित करना अत्यन्त आवश्यक है।

श्री मोतीलाल जैन 'विजय' एवं श्रीमती विमला जैन, कटनी

शोधादर्श–81 में हम सब के पुरखे भगवान ऋषभदेव से सम्बद्ध लेख/चित्रावली सचमुच प्रशंसनीय है। शोध को समर्पित जैनेतर लेखकों

को प्रोत्साहन प्रेरणास्पद है। इक्यासी अंक तक के पूर्व सूत्रधारों का पुण्य स्मरण मन को आह्लादित करता है।

परम श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद जी द्वारा रोपित **शोधादर्श** रूपी वट वृक्ष के आप सब सुयोग्य वंशधर बहुतशः स्मरणीय हैं, अभिनन्दनीय हैं। नलिन कान्त जी आपकी सम्पादन कला सर्वथा स्तुत्य है। यह भी उल्लेखनीय है कि **शोधादर्श** आगमिक ज्ञान प्रदाता है।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श–80 जैन स्थापत्य को समर्पित है। डॉ. शशि कान्त का आलेख 'जैन स्थापत्य' और डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी का शोध–सारांश 'जैन मंदिरों की स्थापत्यकला – विश्लेषणात्मक अध्ययन' जैन स्थापत्य के विकास और विशिष्टताओं को प्रदर्शित करते हैं। दोनों आलेख श्रमसाध्य, शोधपरक और कला के साथ भाव प्रधानता के दिग्दर्शक हैं। श्रीमती निधि का निष्कर्ष – ''यह बात ध्यान रखने योग्य है कि बौद्ध या ब्राह्मणधर्मी अवशेषों की तुलना जैन अवशेषों से कदापि न की जाये क्योंकि साधना के क्षेत्र में जैन धर्म विशिष्ट और मौलिक रहा है। इसी आधार पर कला का भी मूल्यांकन किया जाना चाहिए। वाह्य परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप जो अंतर दिखायी देता है वह कालक्रमानुसार बहुत अधिक नहीं है। विशेषताएं अपरिवर्तनशील ही प्रदर्शित लगती हैं''– बहुत ही महत्वपूर्ण, दिशाबोधक और प्रेरक है। सूक्ष्म दृष्टि से अन्वेषण करने का ही यह सुफल है। साधना के क्षेत्र में, धर्म की क्रिया के अंधानुकरण में जैन समाज के एक पंथ विशेष ने, जैन धर्म की इस विशिष्टता की उपेक्षा की है, जो गम्भीर एवं चिन्तनीय है।

भाई श्री रमा कान्त जी कृत ''गुरुगुण–कीर्तन : जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर''' अत्यंत प्रेरक, रोचक और धर्म–संस्कृति को समर्पित व्यक्तित्व के अंतर–बाह्य स्वरूप को प्रकाशित करने वाला है। अत्यंत श्रम साधना, साहस और सुधार भाव से श्री मुख्तार जी ने **ग्रन्थ परीक्षा** लिखी थी, वह अपने आप में अद्भुत और जैनत्व की रक्षा का अमोघ अस्त्र थी। दुर्भाग्य, समाज ने उसका सही मूल्यांकन नहीं किया और जिन कथित जैन शास्त्रों को उन्होंने अप्रमाणिक/जाली सिद्ध किया था उन्हीं के प्रमाण देकर जिन–दीक्षा धारियों /विद्वानों ने जैन साधना–पद्धति को वैदिक–परम्परा के समकक्ष भी नहीं रहने दिया। पंचामृत और स्त्री द्वारा अभिषेक का आग्रह इसी का परिणाम है। आपने 'मुख्तार जी' का व्यक्तित्व और कृतित्व प्रकाशित कर उनकी स्मृति और श्रम–साधना को जीवन्त किया है।

सम्पादन के क्षेत्र में 'शोधादर्श परिवार' ने मुख्तार जी की शैली को अपनाया है, यह **शोधादर्श** की विषय–ग्रहण–क्षमता, उदात्तता और बुद्धि–कौशल का प्रतीक है। प्रकाशित प्रत्येक लेख के साथ सहमति/असहमति, लेखक परिचय आदि व संक्षिप्त समीक्षा सम्पादकीय कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। वीर सेवा मंदिर, मुख्तार साहब की धर्म साधना का प्रतीक/केन्द्र है। क्या ही अच्छा हो, यदि वह, उनकी शैली, समर्पण और उद्देश्य के अनुरूप उनके स्वप्नों की श्रमण संस्कृति और समीचीन साधना सृजन का भावात्मक प्रतीक बने।

श्री रवीन्द्र मालव का 'शिथिलाचार के प्रति जागरूक रहिये' और श्री भूरचंद का 'सेवा के नाम पर घोटाला निन्दनीय' – आलेख समाज और साधकों की विद्यमान आत्मघाती प्रवृत्तियों को उजागर करते हैं। शिथिलाचार/अनाचार की प्रकट/अप्रकट घटनाएं जैन समाज–संस्कृति की सुस्थापित प्रतिष्ठा को कलंकित करते हैं। मूर्तियों की सुरक्षा हेतु मंदिरों एवं अन्य स्थानों पर सी.सी.टी.वी. कैमरे लगाए जाते हैं। प्रत्येक साधक का मन कैमरा है, यदि उस पर दृष्टि जाये तो फिर शिथिलाचार के नियंत्रण/प्रकाशन की भावना से ऐसे कैमरे लगाने का विकल्प भी उत्पन्न न हो। साधु समाज का अस्तित्व और साधना, परम्परानुसार समाज आश्रित होती है। यदि समाज धर्म के प्रति जागरूक हो जाये तो धर्म के नाम पर विषय–वासना की दृष्टि एवं लौकिक–लक्ष्यों की पुष्टि का खेल बंद हो जायेगा। दोनों लेखकों का साहसपूर्ण मार्गदर्शन स्वागत योग्य है।

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव का आलेख – ''आचार्य तुलसी की अनुपम देन 'अणुव्रत''' – प्रेरक, मार्गदर्शक है। आचार्य तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन ने लोक परम्परा को प्रभावित किया और भगवान महावीर की गृहस्थाचरण पद्धति को जीवन्त किया।

शोधादर्श–81 में पाठकों के पत्र स्तम्भ के अंतर्गत आपने डॉ. उषा माथुर (लखनऊ) की ''राजा शिवप्रसाद (जैन) 'सितारे हिन्द''' की आलोचनात्मक सम्मति प्रकाशित कर उसका सम्यक् समाधान प्रस्तुत किया। इन दोनों कार्यो से पत्रिका की अन्वेषणशीलता, उदात्तता और जागरूकता की पुष्टि होती है। डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने खण्दारगिरी की बाहुबली मूर्ति पर गले–कटि–जंघाओं तक सर्प तथा चूहे–छिपकलियों के अंकन को विस्मयकारी और विश्लेषणीय बताया। चन्देरी का निवासी और प्रत्यक्षदर्शी के रूप में मैं बाहुबली की मूर्ति की उक्त विशिष्टताओं की पुष्टि करता हूं। सर्प, छिपकलियों, लताओं

से वेष्ठित ऐसी ही एक कलात्मक भव्य खड्गासन प्रतिमा दि. जैन चौबीसी बड़ा मंदिर में भी विद्यमान है जो बूढ़ी चन्देरी से प्राप्त हुई थी। सम्मतिकार की जागरूकता प्रशंसनीय है।

यह अंक आदि–नगर अयोध्या को समर्पित हो गया, ऐसा लगता है। कटरे का मंदिर, श्री आदिनाथ की जन्मभूमि टोंक, एवं रायगंज स्थित श्री आदिनाथ जिनालय के चित्र देखकर प्रसन्नता हुई। रायगंज मंदिर का प्रतिष्ठा महोत्सव वर्ष 1977 में मूलाम्नाय (तेरहपंथ) पद्धति से सम्पन्न हुआ था जो बाद में, पंथवादी असहिष्णुता के कारण, बीसपंथ में बदल दिया गया। इतिहास–प्रज्ञ डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने 'अयोध्या' आलेख में अयोध्या के ऐतिहासिक–धार्मिक महत्व को रेखांकित करते हुए उसे जैन, वैदिक, बौद्ध और मुसलमान संस्कृति का श्रद्धाकेन्द्र निरूपित किया है तथा भगवान आदिनाथ के जन्म–स्थान टोंक के प्राच्य वैभव, ध्वंस, पुनर्निर्माण एवं विद्यमान स्थिति का वर्णन किया है। साथ ही, डॉ. शशि कान्त ने यह भी स्पष्ट किया है कि कथित बाबरी मस्जिद में मिम्बर नहीं होने के कारण वह मस्जिद नहीं थी। मीर बाकी ने स्वयं इसे ''फरिश्तों के उतरने की जगह'' कहा है। इसका प्रमाण अब ध्वस्त हो गया है।

तत्कालीन (सन्1977) राज्यपाल श्री जी.डी. तपासे का अभिभाषण 'भगवान ऋषभ और अयोध्या' प्रेरणाप्रद एवं ज्ञानवर्धक है। तीर्थंकर ऋषभदेव ने सभ्यता का प्रवर्तन किया और अहिंसा तथा सहिष्णुता का उपदेश दिया। आज के समय ये दोनों प्रासांगिक हैं। हिंसा और असहिष्णुता भय व विनाश की जननी हैं, अतः सामाजिक जीवन से इनका उच्छेद आवश्यक है।

श्रीमती मंजरी जैन का आलेख 'नारी की मर्यादा' शोधपरक और दिशाबोधक है। नारी को मातृदेवी होते हुए भी पुरुष प्रधान आर्य संस्कृति में सम्मानजनक स्थान नहीं मिला। 'मनु' की अनुदारता स्पष्ट निर्विवाद है। बौद्ध संस्कृति में भिक्षुसंघ के सदस्य के रूप में नारी को स्वीकारने का अंतरद्वंद प्रकट है। किन्तु तीर्थंकर महावीर ने नारियों को प्रारंभ से ही पुरुषों के समान स्तर प्रदान किया और प्रकृति–जन्य मर्यादाओं के साथ आर्यिका संघ की स्थापना की। जैन संस्कृति में नारी की विशिष्टताओं का निरूपण कथा साहित्य में भी हुआ। निष्कर्ष में उनका यह कथन समीचीन है कि उसे एक ऐसी मर्यादा प्रदान की जाये जिसमें नारी को समानता का स्तर सहज मिल जाये और वह किसी हीन भावना से अपने को ग्रसित न होने दे। पूर्वाग्रह से निर्मित विद्यमान साहित्य एकांगी होने से अप्रासंगिक

हैं। लेखिका के विचार मार्गदर्शक हैं। मर्यादा में समानता/सम्मान की परम्परा मानव समाज में हितकर होगी।

श्री सुरेश जैन 'सरल' का आलेख 'बीस न तेरा : आगम पंथ मेरा' विचारोत्तेजक और मार्गदर्शक है। आगम से पंथवाद की सिद्धि करने वाले महानुभावों को सम्माननीय पं. श्री जुगल किशोर जी मुख्तार की **ग्रंथ परीक्षा** का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिये और पूर्व आचार्यो के नाम से लिखित बनावटी श्रावकाचारों से समाज को भ्रमित करना बंद कर देना चाहिये। आगम से आशय मूल–आगम और मूलाचार की व्यवस्था है, न कि शिथिलाचार/वैदिक परम्परा से उद्भूत धर्माचार की विकृत परम्परा। राष्ट्र और जैन समाज की एकता के लिये पंथ से परे धर्माचरण अभिनन्दनीय है।

दोनों अंकों के सभी आलेख शोधपरक व प्रेरक हैं। स्थायी स्तम्भ, पूर्ववत सटीक/सार्थक हैं। शोधवृत्ति निरंतर जागरूकता की अपेक्षा करती है जो प्रामाणिकता प्रदान करती है। **शोधादर्श** परिवार इस उद्देश्य हेतु जागरूक है। सभी की श्रम साधना को नमन! तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का वार्षिक प्रतिवेदन 2014–15 एवं उसका वार्षिक चिठ्ठा प्रकाशित किया, पारदर्शिता हेतु आभार!

श्री ललित कुमार नाहटा, नई दिल्ली

शोधादर्श–81 में पृष्ठ 64 पर 'भद्दिलपुर तीर्थ' लिखा गया जो 'श्री मिथिला तीर्थ' होना चाहिये। श्री अगरचन्द जी नाहटा व श्री अहिच्छत्रा तीर्थ के विशेष आवरण के अनावरण समाचार व मेरी प्रतिक्रिया प्रकाशित की, उस हेतु धन्यवाद!

(इंगित अनावधानता के लिए खेद है। – सम्पादक)

श्री सुरेश जैन 'सरल', जबलपुर

अभी, प्रथम डाक से **शोधादर्श का 81वां** अंक मिला। उसे ही पढ़ने बैठ गया। मेरे श्रद्धेय–द्वय डॉ. ज्योति प्रसाद जी एवं श्री अजित प्रसाद जी के आलेख संग्रहणीय हैं, रखूंगा समीप। आप दोनों की प्रकाशित रचनाएं आकर्षक हैं। प्रभावक! अन्य सभी पन्ने भी उत्तम सामग्री से खचित हैं। श्री वेद प्रकाश जी, डॉ. राम कुमार दीक्षित, श्रीमती मंजरी जी, श्री कृपाशंकर जी, श्री तपासे जी की हार्दिक सराहना!

मेरे लेख के अंत में डॉ. शशि कान्त जी की टिप्पणी बहुत प्यारी लगी, लेख और लेखक का महत्व बढ़ाती है, धन्यवाद!

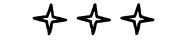

शोधादर्श के आजीवन अभिदाता

1 श्री अवनीश गर्ग जैन एवं श्रीमती रेखा गर्ग, लखनऊ–226001
2 डॉ. आर. के. अग्रवाल, लखनऊ–226012
3 डॉ. (श्रीमती) इन्दु रस्तोगी, लखनऊ–226010
4 डॉ. एस.के. जैन, लखनऊ–226010
5 श्री कमल सिंह रामपुरिया, हावड़ा–711101
6 डॉ. (श्रीमती) कुसुम पटोरिया, नागपुर–440001
7 श्री के.एस. पुरोहित, गांधी नगर–382009
8 प्रो. के.डी. मिश्रीकोटकर, चांदुर बाजार–444704
9 श्री चक्रेश जैन, इन्दौर–452018
10 श्री ब्र. जयनिशान्त जैन, टीकमगढ़–472001
11 डॉ. जितेन्द्र बी. शाह, अहमदाबाद–380001
12 श्री प्रद्युम्नश्री महाराज (द्वारा श्री जितेन्द्र कापड़िया), अहमदाबाद–380007
13 श्री प्रवीन कुमार जैन, नई दिल्ली–110002
14 मुनिश्री प्रमाणसागरजी (द्वारा श्री संतोषकुमार जयकुमार),सागर–470002
15 श्री भरत कुमार मोदी, इन्दौर– 452001
16 श्री माणिक चन्द्र जैन लुहाड़िया, कुन्दकुन्द नगर, सोनागिर–475686
17 श्री रूप चन्द जैन कटारिया, नई दिल्ली–110001
18 श्री ललित सी. शाह, अहमदाबाद–380014
19 मुनिश्री विमलसागर जी (द्वारा डॉ. शैलेन्द्र हरण जी), उदयपुर–313001
20 श्री विवेक काला, जयपुर–302004
21 श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, गाजियाबाद–201010
22 श्री मुकेश जैन, एडवोकेट, मुजफ्फरनगर–251002
23 श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर–251002
24 श्री शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा–282002
25 श्री श्रीकिशोर जैन एवं श्री शरद कुमार जैन, दिल्ली–110051
26 श्री ब्र. सन्दीप सरल, बीना–470113
27 श्री सुरेश चन्द्र जैन, मसूरी–248179
28 श्रीमती त्रिशला जैन शास्त्री, लखनऊ–226004

वर्ष 2015 का वार्षिक शुल्क प्रदायी पाठक

1 श्री अमर नाथ, लखनऊ (2016 भी)
2 श्री अखिलेश जैन, लखनऊ
3 श्री अजित जैन 'जलज', टीकमगढ़
4 श्री अजीत प्रताप सिंह, निगोहां
5 अपभ्रंश साहित्य एकेडेमी, जयपुर
6 श्री इन्द्र कुमार साटीया, हुबली (2020 तक)
7 डॉ. (श्रीमती) उषा जैन, बिजनौर (2018 तक)
8 श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर
9 डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी, जोधपुर
10 श्री दर्शन लाड, मुम्बई
11 डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन, रनधेजा
12 श्री दुलीचंद जैन, चेन्नई (2016 भी)
13 श्री धन कुमार जैन, लखनऊ (2016 भी)
14 श्री धनप्रकाश जैन, मेरठ
15 श्री पवन कुमार जैन, पुणे,
16 श्री पी.एन. सुकुल, लखनऊ
17 बी.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, रुड़की (2016 भी)
18 श्री मगन लाल जैन, लखनऊ (2019 तक)
19 श्री महेश नारायण सक्सेना, लखनऊ (2016 भी)
20 श्री रतन चन्द्र गुप्ता, लखनऊ (2016 भी)
21 श्री विनय कुमार जैन, मशकगंज, लखनऊ
22 श्री वीर कुमार दोशी, अकलुज (2017 तक)
23 श्री संजय किशोर अग्रवाल, मुरादाबाद (2016 भी)
24 श्री हरिहर स्वरूप, लखनऊ
25 श्री हीरालाल जैन, जबलपुर (2016 भी)

अनुक्रमणिका शोधादर्श 77-82

शोधादर्श 42 में अंक 1–42 में प्रकाशित सामग्री की, अंक 48 में अंक 43–48 की, अंक 54 में अंक 49–54 की, अंक 60 में अंक 55–60 की, अंक 66 में अंक 61–66 की, अंक 71 में अंक 67–71 की, और अंक 76 में अंक 72 से 76 की अनुक्रमणिका दी गई थी। उसी क्रम में **शोधादर्श 77–82** (2013–15 ई.) में प्रकाशित सामग्री की अनुक्रमणिका नीचे दी जा रही है।

खण्ड क : लेखक वृन्द

लेखक / रचनाकार	शीर्षक	अंक	पृष्ठ
1 श्री अमर नाथ	जिजीविषा (पद्य)	78	49
	गोचर–अगोचर (पद्य)	79	24
	बेटों के बाप (पद्य)	80	36–37
	मैंने अमृत पी लिया है (पद्य)	82	37
2 श्री अरविन्द कुमार जैन 'गुंजन'	हृदयोद्गार (पद्य)	77	46
3 श्री अजित जैन 'जलज'	भक्ष्य–अभक्ष्य : चिन्तन अपेक्षित	79	44–47
	परिग्रह से कैसी प्रभावना!	80	50–52
4 श्री अजीत प्रताप़ सिंह	खन्दारगिरि की जैन गुफाएं	80	31–33
5 डॉ. अशोक कुमार कालिया	अध्यक्षीय सम्बोधन	77	27–28
6 श्री आदिकुमार भगवन्तराव बंड	जैन रानी अब्बक्कादेवी	77	53–60
7 श्रीमती इन्दु कान्त जैन	दस–लक्षण पर्व	77	19–20
8 डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव	जैन मूर्तिकला में गणविघ्नेश का अंकन	79	27–30
	आचार्य तुलसी की अनुपम देन 'अणुव्रत'	80	44–49
9 श्री कैलाश नारायण टन्डन	मुर्दे की दुनिया	77	47–52
	चाची जी	78	42–46
10 श्री कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'	जीवन चलता फिरता मेला (पद्य)	79	23
	अब तक सुख–दुख की परिभाषा भाषित कर न सके (पद्य)	81	32

11	श्रीमती गीता जैन	जैन धर्म का अर्थबोध	78	40–41
12	डॉ. गोकुल चंद्र जैन	युक्त्यैनुशासनम् एवं युक्त्यनुशासनालंकार	78	26–30
13	डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	शाकाहारी जागरूक हों!	78	74–75
14	श्री जी.डी. तपासे	भगवान ऋषभ और अयोध्या	81	22–24
15	श्री दयानंद जड़िया 'अबोध'	मिले सुख–सावन (पद्य)	82	27
16	डॉ. (श्रीमती) निधि जौहरी	शोध सारांश : जैन मंदिरों की स्थापत्य कला – विश्लेषणात्मक अध्ययन	80	24–30
17	डॉ. परमानन्द जड़िया	ज्ञान–रवि! तुमको नमन! (पद्य)	77	42
		आओ शीघ्र धरा पर प्रभुवर! (पद्य)	78	15
		बोलिए! कैसे बचेगा धर्म (पद्य)	79	22
		सप्त चिन्तन–कण (पद्य)	80	35
		अहिंसा व्रत सर्वोत्तम (पद्य)	81	35
18	कु. पीनल जैन	**Jain Inscriptions of the Chalukya**	82	28–33
19	प्रो. प्रकाश चंद्र जैन	आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की जन्मभूमि एवं उसके समीपस्थ जैन मंदिर व जैन स्मारक	82	19–23
20	श्री बी.पी. सिन्हा	**Hindu View of Vegetarianism**	78	51–73
21	श्री भरतेश कुमार जैन	नमो वीतरागं (पद्य)	80	23
22	श्री भूरचंद जैन	सेवा के नाम पर घोटाला निन्दनीय	80	38–39
23	श्रीमती मंजरी जैन	नारी की मर्यादा	81	29–32
24	श्री मगन लाल जैन	एक निष्ठावान श्रावक का भावचिन्तन	82	34–36
25	श्री मदन मोहन वर्मा	जीवन का यथार्थ बोध (पद्य)	78	33
26	श्रीमती मधु जैन	श्री राजीव कान्त जैन की *सोन चिरैया फिर चहकेगी* का लोकार्पण	79	53–59
27	श्री मुक्तेश जैन 'सरस'	नारी सशक्तिकरण (पद्य)	78	46
		दीप बन मैं जल रहा हूं (पद्य)	79	25
28	डॉ. मोहनचंद जैन	सहजानन्द वर्णी का संस्कृत साहित्य को योगदान	78	31–33
29	श्रीमती मोहिनी जैन	रिपोर्ट : अहिंसा इन्टरनेशनल अभिनन्दन समारोह–2015	82	38–41

30	डॉ. रत्नलाल जैन	कर्म प्रकृतियों का रूपान्तरण–परिवर्तन	79	34–38
31	श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश'	जियो और जीने दो (पद्य)	77	43
		जीवन परिभाषा (पद्य)		44
		कहां आग से आग बुझी है (पद्य)	78	47
		खोने का सुख पाकर देखो!		48
32	श्री रवीन्द्र मालव	शिथिलाचार के प्रति जागरूकता अपेक्षित	80	40–43
33	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	महा दुख रूप इच्छाओं का स्वरूप और भेद–प्रभेद	79	39–43
		मुनि रामसिंह की दृष्टि में शुद्धात्म–शिव और शिव पूजन की अहिंसक सामग्री	82	24–27
34	श्री राजीव कान्त जैन	ठौर मिलता जरूर है (पद्य)	77	45
		रे मन क्यों व्यथित (पद्य)	80	34
		मैं देह के मकान में (पद्य)	82	18
35	डॉ. राम कुमार दीक्षित	**Evolution of the Jina Image**	81	36–39
36	श्री ललित कुमार नाहटा	भांडासर जैन मंदिर	79	31–33
37	श्री लूण करण नाहर जैन	मेरे प्यारे महावीर (पद्य)	78	30
		भज लो चौबीसी जिनराज (पद्य)	79	21
38	श्री विनोद चंद्र पाण्डेय 'विनोद'	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति को प्रणाम	77	24–26
		महावीर वर्धमान (पद्य)		41
39	प्रो वीर सागर जैन	अशुद्धं पुस्तकं शत्रुः	77	60–61
40	श्री वेद प्रकाश गर्ग	अपभ्रंश भाषा साहित्यकार धनपाल	81	7–15
41	श्री स्वराज्य चंद्र जैन	कुछ प्रसिद्ध जैनाचार्य	78	34–39
42	श्रीमती स्वर्णलता श्रीवास्तव	सरस्वती वन्दना (पद्य)	79	26
43	कु. संचिता मित्तल	**Success; Holi (Poems)**	81	40
44	श्री सुरेश कुमार 'आवारा नवीन'	श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रति (पद्य)	81	37
45	श्री सुरेश जैन 'सरल'	बीस न तेरा : आगम पंथ मेरा	81	41–43

खण्ड ख : सम्पादक मण्डल

1 डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	सरस्वती आन्दोलन	77	12–14
	जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्	78	10–15
	जैन–इतिहास विषयक भ्रांतियों का निरसन	79	10–13
	जैन धर्म की प्राचीनता	80	13–15
	अयोध्या	81	16–21
	मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य	82	5–10
2 श्री अजित प्रसाद जैन	महावीर की जन्म नगरी पर विवाद उचित नहीं	77	9–11
	भगवान महावीर का संघ परिवार	78	8–9
	समाज सुधार में धर्म गुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो	79	14–15
	राजा शिव प्रसाद (जैन) 'सितारे हिन्द'	80	16–18
	जैन धर्म के मूल तत्त्व	81	25–28
	तीर्थंकर भ0 महावीर का शासन	82	11–12
3 श्री रमा कान्त जैन	आचार्य शिवकोटि	77	5–8
	कवि महोपाध्याय समयसुन्दर	78	5–7
	जैन पुस्तकों और पत्र–पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठ	79	16–18
	जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर'	80	5–12
	जिनवाणी–वन्दना (पद्य)	81	6
	अध्यात्म रसिक कविवर भगवतीदास	82	13–17
4 डॉ शशि कान्त	आवाहन	77	17–18
	शाश्वत राग (पद्य)		88
	वीर शासन का जन्म–स्थान राजगृह	78	16–25
	इतिहास सन्देश (पद्य)		50
	कषाय और परिग्रह		76–77
	आचार्य तुलसी	79	5–9
	जैन स्थापत्य	80	19–23
	बाबरी मस्जिद	81	21
	जैन दार्शनिक चिन्तन		33–34

		The Jain Speculative Thought		34-35
		जैन समाज की एकता		43
		सविनय स्मरण	82	42–44
		सन्थारा पर हंगामा		56–57
		साहित्य सत्कार :		
		14 कृति	77	68–74
		14 कृति	78	78–83
		12 कृति	79	60–65
		21 कृति	80	53–60
		27 कृति	81	48–58
		10 कृति	82	45–49
5	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल	श्रद्धेय डॉ. साहब का स्मरण	77	19–20
6	श्री अंशु जैन 'अमर'	पुनीत स्मृति	77	15–16
		शोध पुस्तकालय की स्थापना और श्रुत–पंचमी पर्व		21–23
		पुनीत स्मरण		79–80
7	श्री सन्दीप कान्त जैन	धन्यवाद	77	32
8	श्री नलिन कान्त जैन	सम्पादकीय	77	4
			78	4
			79	4
			80	4
			81	5–6
			82	4
		तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का प्रगति प्रतिवेदन		
		वर्ष 2012–13	77	62–67
		2013–14	79	48–52
		2014–15	81	44–47

खण्ड ग : विविध

अभिनन्दन 77 (76), 78 (84–92), 79 (67–68), 80 (61–63), 81 (59–62), 82 (50–51)

सम्मानित शोधार्थी 77 (29–30)

परिचय (विशिष्ट अतिथि) 77 (31)

शोक संवेदन 77 (77), 78 (93–94), 79 (69–70), 80 (63), 81 (62–63), 82 (52)
आभार 77 (78), 78 (95), 79 (66), 80 (61), 81 (58), 82 (50)
समाचार विविधा 77 (75–76), 78 (96–99), 79 (71–74), 80 (64–65), 81 (64–66), 82 (53–55)
शोधादर्श के अभिदाता 78 (104), 79 (80), 80 (72), 81 (72), 82 (64)
आवश्यक सूचना 77 (87), 78 (कवर पृ. 4), 79 (79), 80 (71), 81 (4), 82 (72)
श्री महावीर वचनामृत : 82 (12)
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति की प्रबन्ध समिति 77 (88)
अनुकमणिका (अंक 77–82) 82 (65–71)
सुधी पाठक :
श्री अशोक सहजानन्द 77 (81)
श्री अजित जैन 'जलज' 80 (66)
श्री अजित प्रसाद जैन 81 (67)
डॉ. (श्रीमती) उषा जैन 81 (67)
डॉ. उषा माथुर 81 (67–68)
डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव 77 (81–82), 78 (100–01), 79 (75), 80 (66), 81 (69), 82 (58–59)
श्री कैलाश नारायण टन्डन 77 (83), 78 (101), 79 (75–76), 80 (66–67)
श्री जितेन्द्र कुमार जैन 77 (85)
डॉ. चेतन प्रकाश पाटनी 80 (67)
श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' 77 (83), 82 (59)
डॉ. परमानन्द जड़िया 77 (84), 78 (101–02), 79 (76–77), 81 (70)
श्री पी.एन. सुकुल 82 (59)
प्रो. प्रकाश चन्द्र जैन 81 (70)
श्री प्रेम चन्द जैन 80 (67)
श्री बालकवि बैरागी 80 (67)
श्री बी.डी. अग्रवाल 78 (102), 79 (77), 81 (70), 82 (59)
श्री मगन लाल जैन 81 (71)
श्री मदन मोहन वर्मा 78 (102–03), 80 (67)

डॉ. (श्रीमती) ममता जैन 81 (71)
डॉ. मालती जैन 79 (77)
मुनि महेन्द्र सागर 80 (68)
श्री मोतीलाल जैन 'विजय'
व श्रीमती विमला जैन 82 (59–60)
डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल 77 (84–86), 80 (68–70), 82 (60–63)
श्री ललित कुमार नाहटा 81 (71), 82 (63)
श्री ललित सी. शाह 79 (77)
श्री श्रीकिशोर जैन 81 (71)
श्री सरमनलाल जैन 'दिवाकर' 79 (78), 81 (71)
श्री सुनील जैन 'संचय' 77 (86)
श्री सुरेश जैन (आई.ए.एस.) 79 (78)
श्री सुरेश जैन 'सरल' 82 (63)
श्री सुशील के. मित्तल 79 (78)

चित्र : अंक 77 श्रुत देवी सरस्वती
शोधार्थी सम्मान की चित्रावली
अंक 78 राजगिर में समवसरण मन्दिर
दाम्पत्य की हीरक जयंती की चित्रावली
अंक 79 ओसिया का महावीर मन्दिर
सोनचिरैया फिर चहकेगी का लोकार्पण : चित्रावली
अंक 80 घनेराव का महावीर मन्दिर, मथुरा का आयाग्पट्ट,
ग्यारसपुर का मालादेवी मन्दिर,
हम्पी का गणिगित्ती मन्दिर
अंक 81 अयोध्या के मन्दिर और टोंक
अंक 82 कुन्दकुन्द भारती में अभिनन्दन समारोह की चित्रावली

(अंक के आगे कोष्ठक में पृष्ठ संख्या है।)

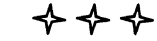

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क रु. 60/–(साठ रुपये), **'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.,ज्योति निकुंज,चारबाग, लखनऊ–226004'**, को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम व पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क 25 डालर है।

शोधादर्श षड्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक जून–अन्त और दिसम्बर–अन्त में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासम्भव लेख 3–4 टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। लेख सामान्यतया हिन्दी में होने चाहिएं, परन्तु अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–226004,** के पते पर भेजे जायें।

प्रत्यावर्तन में पत्रिका की केवल एक प्रति सम्पादक को उपरोक्त पते पर भेजी जाये।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेख में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

✧✧✧

– सम्पादक

अभिनन्दन समारोह की झलकियां

श्री नलिन कान्त जैन को अभिनन्दन-पत्र भेंट

आचार्य श्री विद्यानन्द जी के साथ सम्मानित महानुभाव